॥ श्रीहरिः ॥

1871▲

आवागमनसे मुक्ति

जयदयाल गोयन्दका

।। श्रीहरिः ।। 1871

आवागमनसे मुक्ति

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
के प्रवचनोंसे संकलित

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

निवेदन

मनुष्य-जन्म बड़ा दुर्लभ है—'*कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥*' यह जीव नाना योनियोंमें भ्रमण करता हुआ कष्ट पाता रहता है तथा महान् दुःखी होकर तंग आ जाता है। उस समय भगवान् कृपा करके उस जीवको मनुष्ययोनि देते हैं, जिससे यह बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करसे छूटकर भगवत्प्राप्ति कर ले। मनुष्ययोनिके लिये जब यह जीव गर्भमें आता है, शास्त्र कहते हैं कि तब यह भगवान्‌से प्रार्थना करता है कि हे प्रभो! मुझे यहाँसे बाहर निकालें, अब मैं केवल आपका भजन ही करूँगा। किंतु बाहर आते ही यह अपनी इस प्रतिज्ञाको प्रायः भूल जाता है। गृहस्थके कार्योंमें तथा विषयोंमें ही अपने मनुष्य-जीवनके अमूल्य समयको बिताने लगता है। वह भोगोंके लिये और धन कमानेके लिये पापोंके करनेमें नहीं हिचकता। इन सब जीवोंकी दशा देखकर संत-महात्माओंका हृदय द्रवीभूत हो जाता है। उनके मनमें बार-बार यही स्फुरणा होती है कि किस प्रकार यह मनुष्य अब जन्म-मरणसे पिण्ड छुड़ावे। इसके लिये वे अथक प्रयत्न करते हैं।

श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका जिन्होंने गीताप्रेस गोरखपुरकी स्थापना की थी, उनके भी यह लगन हर समय बनी रहती थी। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये उन्होंने आध्यात्मिक साहित्य, गीता, रामायण आदि सस्ते मूल्यमें उपलब्ध करवाये ताकि उन्हें पढ़कर लोग अपना जीवन सुधारें तथा इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये स्वर्गाश्रम ऋषिकेश गंगाके पार वटवृक्षके नीचे, गंगाके किनारे टीबड़ीपर तीन-चार महीने सत्संग कराया करते थे। उनके सत्संगमें प्रवचनका एक ही लक्ष्य था कि उनकी बातोंको सुनकर, अपने जीवनमें लाकर हम जन्म-मरणसे छुटकारा पा जायँ।

हमें पूर्ण विश्वास है कि इन प्रवचनोंके पढ़ने, सुनने और मनन करनेसे हमें आध्यात्मिक लाभ विशेषतासे होगा। पाठकगण इन प्रवचनोंसे लाभ लें, इस दृष्टिसे इन पुराने संगृहीत प्रवचनोंका संकलन करके यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। पाठक लोग इनसे लाभ लें, यही हमारी सविनय प्रार्थना है।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीहरि: ॥

साथीका साथ नहीं छोड़ना चाहिये

राग-द्वेषके नाशके लिये सबसे बढ़कर उपाय है भगवान्‌की अनन्य भक्ति।

भगवान् राम हनुमान्‌जीसे कहते हैं—

समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ॥

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

सब मुझे समदर्शी कहते हैं, परन्तु मुझे मेरा अनन्य भक्त प्रिय है। जो कुछ चराचर देखनेमें आते हैं, उन्हें परमात्मा समझकर व्यवहार करे, फिर नारायणके साथ राग-द्वेष किस प्रकार होगा। इसलिये हम सर्वत्र परमात्माको ही समान भावसे देखें। ऐसा न हो सके तो भगवान्‌के नामका ही जप करें, उससे भी सब कुछ हो सकता है। जब एकान्तमें जाकर बैठते हैं, तब मनमें अनेक संकल्प आते हैं, राग-द्वेष हो जाते हैं। अच्छा संकल्प आने दो। जो कुछ संकल्प आवे, उसे परमात्माका स्वरूप समझे। समझना चाहिये कि भगवान् ही संकल्पके रूपमें आते हैं। जब हम नारायण समझने लगेंगे तो सब संकल्प भाग जायँगे।

यों तो भगवान् सर्वत्र विराजमान हैं ही, परन्तु बद्रिकाश्रममें नर-नारायणरूपसे भगवान्‌ने तपस्या की है। हम चलें तो भगवान्‌को अपने साथ समझें। हम चलते हैं तो वे चलते हैं, हम खाते हैं तो वे खाते हैं, हम ठहरते हैं तो वे ठहर जाते हैं। जो कोई आपका साथी हो जाय, उसका साथ नहीं छोड़ना चाहिये।

प्रवचन—दिनांक ९-५-१९४४, दोपहर, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

साथी बीमार हो जाय उसकी सेवा करें। जो उसे छोड़कर चले जाते हैं, भगवान् उनसे नाराज हो जाते हैं। छोड़कर जाना भी नहीं चाहिये। जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण परमधामको पधार गये, उस समय पाण्डवलोग तीर्थ यात्राको गये। सब तीर्थ करके उत्तराखण्डमें गये। बद्रिकाश्रम लाँघकर गौरीशंकर पर्वतपर चढ़ने लगे। द्रौपदी बर्फपर गिर गयी। भीमसेनने पूछा—महाराज आप कहा करते हैं कि बिना पापके मृत्यु होती ही नहीं, फिर द्रौपदीकी मृत्यु क्यों हो रही है। महाराजने कहा—यह अर्जुनसे ज्यादा प्रेम करती थी। फिर सहदेव गिरे। पूछनेपर बताया कि इसके अभिमान था कि मेरे समान कोई विद्वान् नहीं है। नकुलके गिरनेपर बताया कि इसके सुन्दरताका अभिमान था। अर्जुन गिरे तो बताया कि इसकी प्रतिज्ञा भंग हो गयी, इसलिये यह मर रहा है। भीमसेन गिरे तो महाराज युधिष्ठिरने कहा कि तेरे अभिमान था कि मेरे समान कोई बली नहीं है। इसके बाद केवल युधिष्ठिर रह गये। इन्द्र अपना रथ लेकर आये। उसपर युधिष्ठिर सवार हुए। महाराज युधिष्ठिरने देखा कि पीछे एक कुत्ता आ रहा है। उन्होंने कहा कि यह भी मेरे साथ ही चलेगा। इन्द्रने कहा—कुत्ता स्वर्गमें नहीं जा सकता, कुत्ता पालनेवाला नरकमें जाता है। युधिष्ठिरने कहा कि जो साथीको छोड़कर चला जाता है, वह नरकमें जाता है। यह मेरे साथ यहाँतक आया है, यदि कुत्ता नहीं जा सकता तो आप अपने रथको ले जाइये, मुझे स्वर्गकी आवश्यकता नहीं है। कुत्तेके लिये वहाँ जगह नहीं है तो मुझे भी वहाँ जानेकी आवश्यकता नहीं है। कुत्ता क्या वे तो साक्षात् धर्मराज थे, प्रकट हो गये। उन्होंने कहा—युधिष्ठिर! मैं तो तुम्हारी परीक्षा ले रहा था।

यहाँ हमें शिक्षा लेनी चाहिये कि कोई भी साथमें हो, उसे छोड़ना नहीं चाहिये। नहीं तो बद्रीनारायणजी उससे मुख मोड़ लेते हैं। अपने जो आश्रित हैं, उनको त्यागकर जाना बड़ा पाप है। बद्रीनारायणजी हमारी परीक्षा ले रहे हैं कि देखें, यह कैसा व्यवहार करता है? हम देखते हैं कि लोग बद्रिकाश्रम जाकर तो आते हैं, किन्तु उनका वही व्यवहार होता है। स्त्रियोंकी भी वही दशा है। चारों धाम कर आती हैं, फिर लड़ती हैं। तीर्थोंमें साधुताका व्यवहार करना चाहिये। स्वार्थको त्यागकर व्यवहार करना चाहिये। स्वयं कष्ट सहना चाहिये, दूसरोंको आराम पहुँचाना चाहिये। ***जो तोको काँटा बुवे ताहि बुवे तू फूल।*** बस, इसके आगेकी लाइन हमारे कामकी नहीं है। अपनी शक्तिके अनुसार दान करे। तीर्थोंमें जो यज्ञ, दान, जप और तप किया जाता है, वह अनन्त गुना हो जाता है। इसी प्रकार जो यहाँ पाप करता है, वह अनन्त हो जाता है। दैवी सम्पदाके जो गुण बताये गये हैं, उनका सेवन करना चाहिये और प्रमाद, आलस्य, भोग, पाप एवं दुर्गुणोंका एकदम ही त्याग कर देना चाहिये। रास्तेमें कोई तीर्थ आ गया, उसमें स्नान करना चाहिये। साधु लोगोंकी सेवा करना, उनकी बतायी हुई बातोंको धारण करना तथा हितकारी विनययुक्त वचन कहना चाहिये। झूठ नहीं बोलना, गाली-गलौज नहीं करना, दूसरेकी स्त्रीको माताके समान समझना, यहाँपर मन, इन्द्रियोंका संयम करना—यही तप है। नामका जप करना चाहिये। दिनभर आपलोग यहाँ रहते हैं यह तप ही तो है। तप क्या है—संयम। खानेमें संयम, सादगीसे रहना, सादा भोजन करना चाहिये। मेवा-मिठाई नरकमें ले जानेवाली है, वस्त्र भी मोटे पहनने चाहिये।

प्रभुसे प्रार्थना करे—प्रभो! यदि हमारेसे कोई भी सेवा न बने तो अपकार तो न हो और दो बात याद रखनेकी है—

दो बातन को भूल मत जो चाहत कल्यान।
नारायन इक मौतको दूजे श्रीभगवान॥

एक मृत्युको तथा एक नारायणको याद रखना चाहिये। मृत्यु तो पद-पदपर है। बद्रिकाश्रम जाकर लौट आवे तो नया जन्म है। मृत्युको याद रखनेसे पाप नहीं बनता और भगवान्‌को याद रखनेसे कल्याण हो जाता है। और भी दो बात याद रखनी चाहिये—

सुत दारा अरु लक्ष्मी पापीके भी होय।
संत मिलन अरु हरि भक्ति दुर्लभ जगमें दोय॥

स्त्री, पुत्र और धन तो पापियोंके भी देखनेमें आते हैं। संतमिलन और भगवान्‌का भजन यह दो ही बात कठिन है। तीर्थोंमें आप जायँ तो धर्म, मोक्ष और काम—ये तीन चीजें वहाँ मिलती हैं। अर्थ तो यहाँ खर्च होता है। उसमें धर्म और मोक्ष दोकी ओर ही ध्यान रखना चाहिये। धर्मका पालन करना चाहिये और ईश्वरकी भक्ति करनी चाहिये। इसके लिये यही साधन है कि जो कुछ अपनेसे बने जो अनाथ हैं, उनकी शरीर, मन, वाणी और धनसे सेवा करे तथा परमात्माकी भक्ति, सत्संग एवं तीर्थोंमें स्नान करे। भगवान्‌के नामका जप-कीर्तन करते हुए जाना चाहिये। वह मार्ग वैकुण्ठसे भी बढ़कर हो जाता है। बद्रिकाश्रम जानेवालोंको इस प्रकार करना चाहिये।

महाराज युधिष्ठिर आज नहीं हैं, किन्तु उनका नामस्मरण करनेसे, उनकी जीवनीको याद करनेसे पापी भी पवित्र हो जाते हैं। महाभारत वनपर्वमें एक कथा आती है—राजा नहुषने बड़ा पाप किया था। इन्द्राणीके पास ऋषियोंद्वारा ढोई जानेवाली

पालकीपर बैठकर जा रहा था। उसने ऋषियोंके लात मारी; उन्होंने शाप दिया सर्प हो जा। अगस्त्य ऋषिने कहा कि जब युधिष्ठिरसे तुम्हारी बातचीत होगी, तब तुम मुक्त हो जाओगे।

राजा युधिष्ठिर ऐसे धर्मात्मा थे। उनका प्रत्येक चरित्र नीति और धर्मसे ओतप्रोत है। इसीलिये उनका नाम संसारमें धर्मराज विख्यात हो गया। राजा युधिष्ठिरके जीवनमें केवल एक बात अपवित्र हुई, उनका और सारा जीवन पवित्र था। उसी एक बारके मिथ्या भाषणसे उन्हें कल्पित नरक भी दिखाया गया। एक झूठके कारण उन्हें कल्पित नरक देखना पड़ा। जो रात-दिन झूठ बोलते हैं उनकी क्या दशा होगी। इसलिये रात-दिन भगवान्‌के नामका जप करना चाहिये और कोई उपाय नहीं है।

महाराज युधिष्ठिरकी बड़ी भारी महिमा आती है। एक वर्ष उन्होंने अज्ञातवास किया। सारी पृथ्वी खोज डाली, किन्तु दुर्योधनको पता नहीं लगा। भीष्मजीने कहा पाण्डव कहाँ है मुझे पता है। खूब ध्यान देकर सुनो—जिस देशमें महाराज युधिष्ठिर होंगे, उस देशमें महामारी नहीं आयेगी, वहाँ अकाल नहीं पड़ेगा, वहाँ गायोंकी वृद्धि होगी, धन-धान्य बढ़ेगा, वहाँकी प्रजा धर्मात्मा होगी, वहाँ दैवी प्रकोप नहीं होगा, वहाँकी प्रजा सत्यवादी होगी। यह व्याख्यान भीष्मजीने बड़े विस्तारसे दिया, तब दूतोंने कहा कि यह सब लक्षण तो विराटनगरमें दीखते हैं। इससे अनुमान हो गया कि राजा युधिष्ठिर वहींपर ही हैं।

युधिष्ठिरके जीवनकी और भी बहुत-सी बातें आती हैं। महाभारत पाण्डवोंके चरित्रसे भरा है।

नारायण नारायण नारायण

गुरु बनना हितकर नहीं

किसीने यह पूछा है कि गुरु बनाना चाहिये या नहीं। गुरुके विषयमें स्त्रियोंके लिये तो जितनी सुगमता है, उतना किसीके लिये है ही नहीं। उनके लिये गुरु बनानेकी आवश्यकता ही नहीं है। उनके लिये उनका पति ही गुरु है। जो स्त्रियाँ गुरु बनाती हैं और जो गुरु चेली बनाते हैं वे दोनों खतरेमें है। मनुस्मृतिमें बताया गया है कि ससुराल ही स्त्रीके लिये गुरुकुल है, नित्यप्रति रसोई बनाना अग्निहोत्र है। केवल पातिव्रत धर्मसे स्त्री मुक्त हो जाती है। पतिव्रता स्त्रीके समान योगी, ज्ञानी और तपस्वीकी शक्ति नहीं होती। सबसे बढ़कर पतिव्रता स्त्री है। गीतामें कहा है योगी तपस्वीसे श्रेष्ठ है। इसी प्रकार पतिव्रता स्त्री सबसे श्रेष्ठ है। पतिके मरनेके बाद भी पतिको ही गुरु मानकर जबतक जीवित रहे भक्ति करती रहे। वह पतिव्रतासे बढ़कर है। जो स्त्री दूसरेको गुरु बनाती है, वह एक प्रकारसे दूसरेको पति बनाना है। यह व्यभिचार-दोष है। जो नरकोंका द्वार खोलना चाहती हो वह तो चाहे जितने गुरु बनावे। जिन्हें कल्याण करना है उनके लिये तो आवश्यकता है नहीं। यद्यपि पतिके नाते पतिके माता-पिता गुरुजन सब पूजनीय हैं, किन्तु स्वतन्त्रतासे नहीं।

भले व्यक्ति स्त्रियोंको चेली नहीं बनाते। या तो सतीत्व ठगनेके लिये या पैसा ठगनेके लिये चेली बनाते हैं।

रही पुरुषोंके लिये बात तो परमात्मा सबके गुरु हैं ही। मनुष्य यज्ञोपवीत लेता है। जिससे यज्ञोपवीत लिया है वह गुरु है ही। दस-पाँच गुरु मिलाकर क्या छान उठानी है। यदि बनाना ही है

प्रवचन—दिनांक १०-५-१९४४, प्रात:काल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

तो दत्तात्रेयकी तरह चाहे सौ गुरु बनाओ। वह तो शिक्षा ग्रहण करनी है न कि दीक्षा लेनी। किसीमें गुण हों, वह गुण लेने चाहिये। एक चील पक्षी जंगलमेंसे मांसकी बोटी लेकर उड़ा, दूसरी चील उसे मारने लगी। चीलने उस मांसकी बोटीका त्याग कर दिया, दूसरी चीलोंने उस चीलका त्याग कर दिया। दत्तात्रेयजीने यहाँ यह शिक्षा ली कि जितना संग्रह है उसका त्याग कर देना चाहिये। संग्रहके ऊपर ही चीलकी तरह लोग पड़ते हैं। भय उन्हें होता है जिनकी अंटीमें रुपया होता है या जिन स्त्रियोंके पास गहना होता है।

कहावत है—

गधा बाँधे खाटके, चाक सिराने देय।
जिसके पास जोखम नहीं वह चाहे जहाँ सोय॥

× × × ×

खटकेवाली वस्तुको जिसने दीनी छाड़।
चाहे फिरो उजाड़में चाहे बीच बाजार॥

स्वामीजीने खटकेवाली वस्तुको छोड़ दिया, अब चाहे जहाँ रहो। दत्रात्रेयजीने चीलसे शिक्षा ली। दूसरी बात भगवान् सूर्य समुद्रसे जल उठाते हैं, खेतोंमें बरसाते हैं। इससे शिक्षा ली कि जहाँ ज्यादा संग्रह हो वहाँसे लेकर जहाँ गरीब हों वहाँ वह बाँट देना चाहिये। यह शिक्षा उन्होंने सूर्यसे ली। इसी प्रकार वे एक जगह गये। देखा एक कुमारीके घरमें अतिथि आ गये, उन्हें भोजन देना है। धानसे चावल निकालने लगी तो चूड़ी बजने लगी। अतिथियोंको पता लग जाय तो शायद वे चले जायँ, इसलिये चूड़ियाँ उतारकर रख दीं, केवल एक एक चूड़ी रहने दी। दत्तात्रेयजीने वहाँ शिक्षा ली कि एकान्तमें अकेला ही रहकर

भजन-ध्यान करे। दो होंगे तो बातचीत होगी। हमें भी यह शिक्षा लेनी चाहिये कि ध्यान करना हो तो एकान्तमें करना चाहिये। सत्संग तो चाहे समूहमें करो, भजन-ध्यान एकान्तमें करो। कुमारीको गुरु बनाया, शिक्षा ग्रहण कर ली। इसी प्रकार उन्होंने अनेक गुरु बनाये। सबसे गुण लिये, इसी प्रकार हमें गुण ग्रहण करना चाहिये। यदि कहो आत्माके कल्याणके लिये गुरु सदासे बनाये जाते हैं। गीतामें भगवान् कहते हैं—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(गीता ४। ३४)

उस ज्ञानको तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे वे परमात्मतत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे।

वेदोंमें भी कहा है श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महात्माओंके पास जाकर उस तत्त्वको जानना चाहिये। बात यह ठीक है। सती पतिव्रता शाप देती नहीं, कुसतीका शाप लगता नहीं। महात्मा ज्ञानी पुरुष तो शिष्य बनाते नहीं। अज्ञानी भगवान्‌को मिला नहीं सकते। अन्धेको अन्धा गड्ढेमें ले जाकर गिरा देता है। खासकर नीचे दर्जेके लोग शिष्य बनाया करते हैं। इसलिये परमात्माको गुरु बनाना चाहिये। यज्ञोपवीत देनेवाला गुरु है ही। माता-पिता भी गुरु हैं ही। और बनाना पड़े तो महात्माको गुरु बनाना चाहिये। प्रायः महात्मा गुरु बनते नहीं। सर्वथा यह बात भी नहीं है कि बनते ही नहीं, कहीं बन भी जाते हैं। देखा है बहुत ऊँचे कोटिके पुरुष होते हैं, बहुत दिन सेवा करनेसे वे यदि पात्र

समझते हैं तो शिष्य बना लेते हैं। अब बात रही कि गुरु कौन होना चाहिये? वास्तवमें ब्राह्मण ही गुरु बन सकता है। वैश्य, क्षत्रियका अधिकार नहीं है। अश्वपति राजाकी कथा आती है। पिप्पलाद आदि ऋषि उनसे शिक्षा लेने गये। राजाने कहा—मैं आपको गुरु बनकर शिक्षा कैसे दे सकता हूँ। मैं क्षत्रिय हूँ। कोई भी चीज मेरे पास हो वह दान तो दे सकता हूँ। ऋषियोंने कहा आपके पास ब्रह्मविद्या है, हम ब्राह्मण हैं, आपसे भिक्षा चाहते हैं, हमें तो उस चीजकी आवश्यकता है जो तुम्हारे पास है। राजाने ब्राह्मणोंको ऊँचे आसनपर बैठाकर वही चीज उन्हें दानके रूपमें दी। अपनेको गुरु नहीं बनाया, अपना आसन नीचा रखा। सबसे पहले पूछा कि आप कहाँतक जानते हैं, मुहूर्त्तभरके बीचमें सबको शिक्षा दे दी। वास्तवमें परमात्माके तत्त्वका ज्ञान कराकर विदा किया। यह कैसी सभ्यताकी बात है। वे तो दीक्षाके लिये गये ही थे, परन्तु राजाका कैसा व्यवहार रहा। ब्राह्मणोंका ही अधिकार है गुरु बननेका, ऐसी बात भी मिलती है। जब ब्राह्मण नहीं हो तो क्षत्रिय भी उस पदको स्वीकार कर सकता है। आपत्तिकालकी बात है, परन्तु यह नियम नहीं है। ब्राह्मण कैसा हो? विद्या-विनय सम्पन्न तथा सदाचारी हो। परमात्माकी प्राप्ति तो उन्हें नहीं है, किन्तु सदाचारी है तो उन्हें भी गुरु बना सकते हैं। त्याग हो, सदाचार हो, ऊँचे दर्जेके साधक हों। जिस प्रकार काशीमें पं० श्रीमदनमोहनजी शास्त्री हैं, वे गुरु बनाने लायक हैं। परमात्माकी प्राप्तिका तो क्या पता, उन्हें है या नहीं, किन्तु वे दैवी सम्पदावाले पुरुष हैं। ऐसे पुरुष बहुत कम मिलते हैं। ऐसे पुरुषोंको गुरु बना सकते हैं। उन्हें भी स्वीकार कर लेना ही ठीक है। कारण अच्छे पुरुष नहीं स्वीकार करेंगे तो मर्यादा किस

प्रकार चलेगी। यदि कोई अच्छा पुरुष गुरु नहीं बने और हम बनाना चाहें तो उसके गुणोंको हमें ग्रहण करना चाहिये। यदि हमें गुरु बनाना ही हो तो एकलव्य भीलका दृष्टान्त हमें मिलता है।

एकलव्य भीलने गुरु द्रोणाचार्यजीसे धनुर्विद्या सिखानेके लिये प्रार्थना की। द्रोणाचार्यजीने उसे शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया। एक दिन वनमें गुरुजी अपने शिष्योंके साथ कहीं जा रहे थे। मार्गमें एक कुत्ता भौंक रहा था। एकलव्यने उसका मुँह बाणोंसे इस प्रकार भर दिया कि उसे चोट भी नहीं लगी एवं भौंकना भी बन्द हो गया। उसकी कुशलताको देखकर सभी दंग रह गये। गुरुजीने पूछा—तुमने यह विद्या किससे सीखी है। एकलव्यने उत्तर दिया—आपसे ही सीखी है। उसने द्रोणाचार्यजीको गुरु मानकर, उनकी मूर्ति बनाकर उसके सामने अभ्यास करके यह दक्षता प्राप्त कर ली थी।

बात यह है कि गुरु-शिष्यमें गुरुकी प्रधानता नहीं है, अपितु शिष्यकी प्रधानता है। हमने ऐसा व्यवहार देखा है कि गुरु कहता है कि मैं तुमको शिष्य बनाऊँगा। वास्तवमें शिष्य चाहेगा, तभी गुरु बन सकता है। यह बात शिष्यके अधिकारकी है। इसलिये शास्त्रोंमें कहा है कि गुरु समझ-सोचकर बनाना चाहिये। कुलमें पुरोहित हैं, वे गुरु हैं ही। भगवान् हमारे परम गुरु हैं ही। फिर भी हम गुरु बनाना चाहें तो जिसमें अच्छे गुण हों वह ग्रहण कर लें। फिर भी हम गुरु बनाना चाहें तो जैसा मैंने बताया है वैसा गुरु खोजकर बनाना चाहिये। मिल जाय तो अवश्य उन्हें बनाना चाहिये। मिल जायँ और वे नहीं बनें तो एकलव्य भीलकी तरह बना लेना चाहिये।

प्रश्न—महाभारतमें लिखा है कि ब्राह्मणको निम्न वर्णवालेको अपना शिष्य नहीं बनाना चाहिये। फिर निम्न वर्णवाले किसे गुरु बनायें।

उत्तर—इसके लिये शंकाकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि बननेवालोंकी बौछार है, यह बात तो हल हो जायगी।

एक नयी बात बतायी जाती है। श्रद्धा-प्रेम दो बहुत ऊँचे कोटिकी चीजें हैं। जब इनकी पराकाष्ठा होती है तब प्रेमीके वियोगमें देहका पात हो जाता है। जानकर मरना नहीं पड़ता। जलके वियोगमें जैसे मछली तड़पकर मर जाती है, ऐसे ही विरहके वियोगमें मर जाता है। ऐसी अवस्था पतिव्रता स्त्रीकी होती है।

ईश्वर और महात्मा दोनोंमें श्रद्धा-प्रेम करना चाहिये। श्रद्धा ऊँची कोटिकी है या प्रेम? दोनोंके मुकाबलेमें मूल्यवान् चीज कौन है? ये दोनों चीजें महात्मा और ईश्वर दोनोंमें करनी चाहिये या कुछ अंतर है? ईश्वरमें तो दोनों ही करनी चाहिये। महात्मामें भी दोनों ही करनी चाहिये। किन्तु महात्मामें श्रद्धा प्रधान है। प्रेम इतना प्रधान नहीं है। श्रद्धा तुरन्त ही कल्याण करनेवाली है। प्रेम अच्छी चीज है, किन्तु तुरन्त कल्याण करनेवाला नहीं है।

ईश्वरमें दोनों ही चीजें कल्याण करनेवाली हैं, परन्तु प्रेमकी प्रधानता है। भगवान् राममें सीताकी श्रद्धा भी है प्रेम भी है, वे साथ जानेका आग्रह करती हैं वहाँ प्रेमकी प्रधानता है। भगवान्‌की बात नहीं मान रही हैं तो उन्हें कोई पाप नहीं लगता। यही बात लक्ष्मण और भरतकी थी। प्रेम एक ऐसी चीज है। जिसके सामने श्रद्धाका तिरस्कार किया जा सकता है। सीता, भरत और लक्ष्मण तीनोंमें ही स्वार्थका त्याग है। प्रेमके नाते भगवान्‌की बातकी अवहेलना है। स्वार्थरहित प्रेम ही विशुद्ध प्रेम है, पवित्र प्रेम है। निष्काम प्रेमका जितना ऊँचा दर्जा है, उतना किसीका नहीं। सीताका प्रेम हेतुरहित था। यदि कुछ हेतु भी हो

तो भी प्रेमका दर्जा ऊँचा ही है। सीता कहती है—

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥

जैसे बिना जीवके देह और बिना जलके नदीकी जो दशा होती है, वही दशा पुरुषके बिना स्त्रीकी होती है।

यहाँ ऐसा प्रतीत हो रहा है कि सीता अपना सुख बतला रही है। मैं वहाँ जाकर सेवा करूँगी तो मुझे सुख मिलेगा। आप थक जायँगे तो मैं आपके पावोंको दबाऊँगी, उस समय मुझे क्या दुःख होगा। प्रधान बात है यहाँ सीता जा रही है भगवान्‌को सुख पहुँचानेके लिये, लक्ष्मण भी इसीलिये जा रहे हैं। किन्तु वे कहते नहीं हैं कि आपकी सेवाके लिये मैं चल रहा हूँ। लक्ष्मणकी माँ तो कह रही है—

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥

हे प्यारे लक्ष्मण! तुम्हारे ही भाग्यसे राम वनको जा रहे हैं, दूसरा कोई हेतु नहीं है।

भगवान्‌की आज्ञा लक्ष्मण नहीं मान रहे हैं। उन्हें कोई पाप नहीं लगता। प्रेम है और निष्कामभाव है, यह निष्कामप्रेम सबसे ऊँचे कोटिकी चीज है। साथमें स्वार्थ भी हो तो भी उसमें न्यूनता नहीं आती। श्रद्धा-प्रेम दोनों ही होने चाहिये। किन्तु मुकाबलेमें प्रेम ही ऊँची चीज है। किन्तु महात्माओंसे काम पड़े तो वहाँ श्रद्धाकी प्रधानता है। जिसकी श्रद्धा अधिक है, वही श्रेष्ठ है।

भगवान्‌में सकामभावसे भी प्रेम हो, तब भी उद्धार हो सकता है। रुपयोंको लेकर भगवान्‌में प्रेम हो, रोगकी निवृत्तिके लिये भी प्रेम हो तो भगवान् कहते हैं— **मद्भक्ता यान्ति मामपि** (गीता ७। २३)

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥

(गीता ७। १६-१७)

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्म करनेवाले अर्थार्थी, आर्त्त, जिज्ञासु और ज्ञानी—ऐसे चार प्रकारके भक्तजन मुझको भजते हैं। उनमें नित्य मुझमें एकीभावसे स्थित अनन्य प्रेमभक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है, क्योंकि मुझको तत्त्वसे जाननेवाले ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है।

चार प्रकारके भक्त हैं सभी उदार हैं, ज्ञानी तो मेरा स्वरूप ही है। ज्ञानीको अपना स्वरूप बताया, किन्तु भगवान् कहते हैं सभी उदार हैं। ध्रुवको राज्य भी मिला, भगवान्‌की प्राप्ति भी हो गयी, तब तो आप कहें कि सकामी ही ठीक रहा। दोनों चीज मिलती है ठीक है, किन्तु संसारके भोग तो धूलके समान हैं, उन्हें प्राप्त करनेमें क्या बुद्धिमत्ता है। सकाम भक्तिसे भी भगवान्‌में कोई लगता है तो आगे जाकर वह भगवान्‌को भी प्राप्त हो जाता है। यदि महात्मा हैं उनमें श्रद्धा न हो, प्रेम है तो भी सांसारिक पदार्थोंमें जो प्रेम है, उसकी अपेक्षा तो महात्मामें प्रेम है, वह ठीक ही है। किन्तु उनके शरीरमें प्रेम कल्याण करनेवाला है यह बात नहीं है। हाँ, श्रद्धासे हमें फल मिल जाय, वह तो धातुकी मूर्तिसे भी मिल जाता है। एक ओर तो श्रद्धा है, एक ओर प्रेम है उसमें श्रद्धा ही प्रधान है। इसलिये जो साधु, महात्मा हैं, योगी हैं, उनके प्रति श्रद्धाकी प्रधानता मानी गयी है। वेदान्तके सिद्धान्तके अनुसार तो प्रेमको कोई दर्जा ही नहीं दिया गया। वहाँ तो श्रद्धाकी ही बात है।

प्रेमके बिना भगवान्‌में चित्त नहीं लगता, प्रेमका दर्जा बहुत ऊँचे कोटिका है। ईश्वरमें प्रेम और श्रद्धा दोनों ही करनी चाहिये। उसमें भी स्वार्थरहित प्रेम ही प्रधान है।

जो लाभकी चीज है, उसका अनुष्ठान करना चाहिये। वही पुरुष बुद्धिमान् है जो अपने-आपको दुःखोंसे बचाता है, समझ-बूझकर कुएँमें पड़ता है, वह तो महामूर्ख है।

नारायण नारायण नारायण

विषमता बुरी, समता, राग-द्वेषका अभाव श्रेष्ठ

आपको एक रहस्यकी तात्त्विक बात सुनायी जाती है। संसारमें आज बहुत भारी राग-द्वेष फैला हुआ है। औरोंकी तो बात ही क्या है जो अच्छे-अच्छे सम्प्रदाय माने जाते हैं, उनमें भी राग-द्वेष देखनेमें आता है। भजन, ध्यान करनेवालोंमें भी देखनेमें आता है। यह कसौटी है, तात्त्विक बात है कि जितना ही अधिक जिसमें राग-द्वेष है, वह उतना ही परमात्मासे दूर है। जिसके जितना ही राग-द्वेष कम है, वह उतना ही परमात्माके निकट है। आपमें जितनी समता है, उतने ही आप भगवान्‌के निकट हैं। परमात्माको प्राप्त होनेके बाद बिलकुल समता आ जाती है।

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

(गीता ५। १८)

वे ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मणमें तथा गौ, हाथी कुत्ते और चाण्डालमें भी समदर्शी ही होते हैं।

किन्तु दुःखकी बात है हमलोगोंमें समताकी बात तो दूर रही, विषमताका बाजार उदारताके साथ चलता है। स्त्रियोंमें तो विषमता और भी अधिक है, लड़का-लड़कीमें भेदभाव, भोजनमें भेदभाव, कहीं-कहीं तो तीन प्रकारकी रसोई एक चूल्हेपर बनती है। नौकरके लिये मोटे भात पकाये जाते हैं, उसके लिये अलग ही रोटी होती है, आटा नीचे दर्जेका रहता है। बनानेमें मोटी और घी कम। घरवाले पूछते हैं कि यह रोटी किसके लिये है, कहा जाता है नौकरके लिये। मुनीम आदिके लिये दूसरी तथा मालिकके लिये

प्रवचन—दिनांक १०-५-१९४४, दोपहर, स्वर्गाश्रम।

दूसरी। अपने पतिके लिये दूसरी, जेठ-जेठानीके लिये दूसरी। भगवान् समझते हैं इसके लिये वैकुण्ठमें क्या, नरकमें भी ठौर नहीं है। जिसका समान भाव होता है वही वैकुण्ठमें जा सकता है। विषमताका भाव बड़ा बुरा है। सबमें समभाव होना चाहिये। जैसे तुम्हारे शरीरमें तुम्हारा समभाव है। कहीं पीड़ा होती है, सभी अंग प्रिय हैं, कोई अप्रिय नहीं है। व्यवहारमें तो भेद है, हाथमें, पैरमें, मस्तकमें बड़ा भेद है। प्रणाम करते हैं तो मस्तकसे करते हैं, पैर भी तो हमारे ही हैं। आदर करना होता है तो क्या किसीको पैर भी दिखाते हैं? आपके ही तो पैर हैं। पैर उठाया तो क्या, मस्तक उठाया तो क्या। रास्ता चलते हैं, पैर लग जाता है तो क्षमा माँगते हैं, मस्तक पैरोंमें लग गया तो क्षमा नहीं माँगते। दो हाथ हैं—यदि कहा जाय एक कटाना पड़ेगा। दोनों समान ही हैं फिर भी ऐसी स्थितिमें बायें हाथको कटाना चाहेंगे। दायेंसे जितना काम हो सकता है बायेंसे नहीं, किन्तु दर्द दोनोंमें समान होता है, किंचित् भी फर्क नहीं है। समबुद्धि है। इसी प्रकार सबमें सम बुद्धि होनी चाहिये। व्यवहारमें तो अंतर होगा ही। भगवान् वही कहते हैं— **पण्डिताः समदर्शिनः** न कि **समवर्तिनः**। मूर्ख लोग कहते हैं समवर्ती। क्या गौपर सवारी करोगे? हथिनीका, कुतियाका दूध नहीं पिया जा सकता। भगवान्‌का कहना तो है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

(गीता ६। ३२)

हे अर्जुन! जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतोंमें सम देखता है और सुख अथवा दुःखको भी सबमें सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।

जैसी शरीरमें समता है, इस प्रकारकी समता सबमें होनी चाहिये। शरीरमें समता है, किन्तु व्यवहारमें अलग-अलग हैं। अपने शरीरमें जैसी प्रीति है ऐसी ही सबमें रखनी चाहिये। एक बात और ध्यान देनेकी है। शैव सम्प्रदायके लोग और वैष्णव सम्प्रदायके लोग एक-दूसरेसे घृणा करते हैं। तिलकोंमें राग-द्वेष है। एक-दूसरेके सिद्धान्तकी तथा देवताकी निन्दा करते हैं। इसी प्रकार विष्णुके उपासक कृष्णके उपासकोंसे घृणा करते हैं और कृष्णके उपासक विष्णुके उपासकोंसे। साकारवाले निराकारवालोंसे घृणा करते हैं और निराकारवाले साकारवालोंसे, एक-दूसरेको नास्तिक कहते हैं। यह बड़ी बुरी बात है, वास्तवमें अल्ला, खुदा, बिस्मिल्ला मुसलमान पुकारते हैं। हमारे भाई लोग उनसे भी राग-द्वेष करते हैं।

वह समझता है हमने मुसलमानोंकी निन्दा की, किन्तु वास्तवमें उसने भगवान्‌की निन्दा की है। अंग्रेज उसीको गॉड कहते हैं, मुसलमान उसीको अल्ला, खुदा कहते हैं, हमलोग उसीको राम, कृष्ण कहते हैं। किन्तु अल्ला, खुदाकी बात तो दूर रही, पूछा यह क्या जप करता है? कहा ॐ, ओम् तो आर्यसमाजी हुए। ओंकार क्या कोई बुरी चीज है? भगवान्‌ने ही कहा है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

(गीता ८। १३)

सब इन्द्रियोंके द्वारोंको रोककर तथा मनको हृद्देशमें स्थिर करके, फिर उस जीते हुए मनके द्वारा प्राणको मस्तकमें स्थापित करके, परमात्मसम्बन्धी योगधारणामें स्थित होकर जो पुरुष 'ॐ' इस एक अक्षररूप ब्रह्मको उच्चारण करता हुआ और

उसके अर्थस्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्मका चिन्तन करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह पुरुष परम गतिको प्राप्त होता है।

भगवान् भी क्या आर्यसमाजी हुए। आर्यसमाजी हैं, जैन हैं, अंग्रेज हैं, मुसलमान हैं, हमें क्या उनसे घृणा करनी चाहिये। इस प्रकार घृणा करना बड़ी बुरी बात है। तात्त्विक बात बतायी जाती है, भगवान्‌का जो सगुण और निर्गुण स्वरूप है, सगुणका भी दो भेद है—सगुण साकार और सगुण निराकार। भगवान् अवतार लेते हैं वह उनका सगुण साकार स्वरूप है। आकाशकी तरह जो व्यापक स्वरूप है वह सगुण निराकार है। निर्गुण निराकारको तो बताया ही नहीं जा सकता। किन्तु सब मिलकर ही भगवान्‌का समग्र स्वरूप है। बादलमें जल है, किन्तु हम उसे बता नहीं सकते। वही बूँद होकर वर्षता है, ओले होकर वर्षता है। धातुसे जल, बर्फ, ओले, परमाणु रूपसे जल एक ही चीज है। हम बादलकी निन्दा करें तो निन्दा किसकी हुई? जलकी ही न। भगवान्‌के किसी भी स्वरूपकी निन्दा करनी है वह भगवान्‌की ही निन्दा करनी है। हम कृष्णकी भक्ति करनेवालोंको देखकर नाक-भौं चढ़ावें और विष्णुकी भक्ति करनेवालोंसे प्रेम करें तो हम समझे नहीं हैं। हर एक भाई, माता-बहनोंको यह बात बहुत समझनेकी है कि कोई भगवान्‌के किसी भी स्वरूपकी उपासना करे, नाक-भौं न चढ़ावें, नहीं तो आप गिरेंगे। हमलोगोंमें भी यह बू आ जाती है। जिस समय भगवान्‌की निराकारकी बात होती है तो कहते हैं यह शुष्क बात है। भगवान्‌के प्रेमकी बात होनी चाहिये। वास्तवमें भगवान्‌का स्वरूप तो सब मिलकर है। हमारे मस्तकको पूजा है तो हमारी ही पूजा है, हाथोंकी पूजा है तो हमारी ही है। एक आदमी कहे हम आपके सारे शरीरकी पूजा करते हैं अंगुलीको थोड़ा छील दें, थोड़ी

टेढ़ी है तो क्या हम ऐसा करनेसे प्रसन्न होंगे। कोई कैसे ही भगवान्‌के स्वरूपकी उपासना करता है, हम निन्दा करते हैं तो भगवान् समझते हैं यह समझता नहीं। वे नाराज होते हैं, किसी भी स्वरूपकी बात हो, आपको समझना चाहिये कि हमारे ही भगवान्‌की बात हो रही है। आप मन मलिन करते हैं तो भगवान् भी मन मलिन कर लेते हैं। तत्त्व समझना चाहिये। दियासलाईमें निराकार आग है, घिसनेसे वह साकार रूपसे प्रकट हो जाती है। इसी प्रकार जो निराकार भगवान् हैं वे ही साकाररूपमें प्रकट होते हैं। दोनोंमें कोई भेद नहीं है। वे ही भगवान् कभी कच्छप, कभी हंस, कभी मत्स्य, कभी देवताके रूपमें प्रकट होते हैं। प्रह्लादके लिये नृसिंह रूपसे आये। भगवान्‌का कोई भी रूप हो, भेदभाव नहीं करना चाहिये। कोई रामका उपासक हो तो देखकर खूब आदर करें और कृष्णका उपासक है उसका भी वैसा ही आदर करें। सभी उपासना बहुत ऊँची कोटिकी है। हम घृणा करें, नीचा-ऊँचा दर्जा समझें, यह भगवान्‌की ही निन्दा है। कोई भाई भगवान्‌के कैसे ही नाम-रूपकी भक्ति करता है, हमें प्रसन्न होना चाहिये। मेरे पास तो कई व्यक्ति आते हैं, वर्षोंसे आते हैं। हमें यह पता नहीं कि यह कौनसे नामका जप करता है, भगवान्‌के हजारों नाम हैं, किसीका ही जप करो। हम तो विष्णुसहस्रनामका जप करते हैं। हजार नामका जप किया, क्या कोई गड़बड़ हुआ? कुछ गड़बड़ नहीं। जो कहता है हम तो '**ॐ नमो नारायणाय**'का जप करते हैं, उससे कहते हैं ठीक है, बदलनेकी आवश्यकता नहीं है, जो करते हो वह ठीक है। एक भाई कहता है हम तो सीतारामका करते हैं। बड़ा अच्छा है। दूसरेसे पूछा राधेकृष्ण, राधेकृष्ण जपते हैं, बड़ा अच्छा है। मैं किसीसे कहता ही नहीं कि यह छोड़कर

दूसरा करो। हिन्दू क्या मेरे पास तो मुसलमान भी आते हैं, उन्हें भी नहीं कहता कि अल्ला, खुदा छोड़कर राम, शिवका जप करो। इसी प्रकार कोई भेदभावसे उपासना करता है, कोई अभेदभावसे करता है, उसे वही उपासना करनेके लिये कहा जाता है।

वास्तवमें हम तो यह समझते हैं कि सगुण निराकार सब भगवान् ही हैं, फिर बुद्धिमें भ्रम क्यों डाला जाय। गीता कहती है—

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।

(गीता ३। २६)

परमात्माके स्वरूपमें अटल स्थित हुए ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि वह शास्त्रविहित कर्मोंमें आसक्तिवाले अज्ञानियोंकी बुद्धिमें भ्रम अर्थात् कर्मोंमें अश्रद्धा उत्पन्न न करे।

भगवान् तो यहाँतक कहते हैं कि जो दूसरे देवताओंकी उपासना करते हैं, मैं उनकी श्रद्धा उसीमें स्थिर करता हूँ; क्योंकि श्रद्धा बनी रहेगी तो कभी वह देवतासे हटाकर मेरेमें भी कर सकता है। फिर भगवान्में श्रद्धा है वह तो हटानी ही क्यों है। जो एक-दूसरेकी निन्दा है वह बेसमझी है, चाहे वह कोई भी हो। यह तात्त्विक बात है और भी एक बात है, कई भोले भाई समझते हैं कि जबतक शरीर रहेगा, तबतक काम, क्रोध, लोभ और राग-द्वेष रहेंगे, चाहे वह अज्ञानी हो या ज्ञानी हो, परन्तु यदि अज्ञानी और ज्ञानी दोनोंमें ही राग-द्वेष रहें तो उनकी पहचान क्या है। गीता १५। ५ पर ध्यान दें—

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥

(गीता १५। ५)

जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्तिरूप

दोषको जीत लिया है, जिनकी परमात्माके स्वरूपमें नित्य स्थिति है और जिनकी कामनाएँ पूर्णरूपसे नष्ट हो गयी हैं—वे सुख-दु:खनामक द्वन्द्वोंसे विमुक्त ज्ञानीजन उस अविनाशी परमपदको प्राप्त होते हैं।

जिनमें मानकी इच्छा नहीं है ऐसे ज्ञानी उस परम पदको प्राप्त होते हैं और जो मानको चाहते हैं वे नरकको जाते हैं, गीतामें देखो—

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम्॥

(गीता १६। ४)

हे पार्थ! दम्भ, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध, कठोरता और अज्ञान—ये सब आसुरी-सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥
त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

(गीता १६। २०-२१)

हे अर्जुन! वे मूढ मुझको न प्राप्त होकर जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं, फिर उससे भी अति नीच गतिको ही प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं।

काम, क्रोध तथा लोभ—ये तीन प्रकारके नरकके द्वार आत्माका नाश करनेवाले अर्थात् उसको अधोगतिमें ले जानेवाले हैं। अतएव इन तीनोंको त्याग देना चाहिये।

दंभ, अभिमान, क्रोध, कड़ा वचन और अज्ञान यह आसुरी सम्पदाका प्रधान लक्षण है। भगवान् कहते हैं ऐसे पुरुषोंको मैं

नरकोंमें डालता हूँ। जबतक आसक्ति है तबतक समझना चाहिये परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई। काम, क्रोध जहाँ हैं, वहाँ क्या शान्ति मिल सकती है? जहाँ आग है वहाँ जले बिना रह सकता है क्या? काम, क्रोध रहते हुए ही ज्ञानी माना जाय तो कुत्ते और मनुष्योंमें अन्तर ही क्या हुआ, किन्तु ईश्वरकी भक्तिमें यह सब उड़ जाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—

काम क्रोध मद लोभकी जब लग मनमें खान।
तुलसी पण्डित मूर्खा दोनों एक समान॥

याद रखो पण्डित और ज्ञानी है, उसमें काम, क्रोध, लोभ भी है, तो मूर्ख और पण्डितमें भेद क्या हुआ? वह कथन मात्रका ही पण्डित है। ये सारे दोष भगवान्‌के तत्त्वज्ञानसे विदा हो जाते हैं और भक्तिसे भी विदा हो जाते हैं।

राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥

जिसके हृदयमें भगवान्‌की भक्ति वास करती है, जाग्रत्‌की तो बात दूर रही, स्वप्नमें भी उसके दुःख आदि नहीं होते। उसका इतना प्रभाव पड़ता है कि दूसरे मनुष्योंके काम, क्रोध भी नष्ट हो जाते हैं। काकभुशुण्डिजी जहाँ कथा करते थे वहाँ एक योजनतक मायाका कटक नहीं जा सकता था। फिर काकभुशुण्डिजीमें आ ही कैसे सकता है। गरुड़जी वहाँ पहुँचे, आश्रमके दर्शनसे अज्ञान भाग गया। जबतक थोड़ी भी इनकी जड़ है, तबतक इनको जड़सहित काट डालनेकी चेष्टा करनी चाहिये। भगवान्‌के दर्शन होनेके बाद तो ये सब नष्ट हो ही जाते हैं। भगवान्‌की प्राप्ति होनेके बाद यह सब नहीं रहते। इसलिये हमें सब जगह भगवान्‌को देखना चाहिये।

श्रद्धा-विश्वासका महत्त्व

लोग साधन करते हैं, कहते हैं फल देखनेमें नहीं आता। इसका उत्तर है फल देखना ही नहीं चाहिये। फलकी ओर देखेंगे तो साधन तेज नहीं होगा। फल चाहे देखनेमें न आये। रोगीको क्या पता? वैद्य कहता है ठीक हो रहा है तो मान लेना चाहिये। बात यह है कि मन बड़ा पाजी है, इसकी आदत पड़ गयी, मुफ्तमें धन चाहता है। सारी दुनियाकी नीयत खराब हो गयी। जिस कामकी ओर देखते हैं ठोस नहीं होता, फिर फल ठोस किस तरह मिलेगा। हमें हर समय चेतावनी मिलती रहती है। सेवाकी तरफ देखते हैं तो उच्चकोटिकी सेवाका भाव बहुत कम देखनेमें आता है। स्वार्थपरायणता इतनी बढ़ गयी है जिससे सब काम मिट्टी हो रहा है। प्रथम तो सेवाका भाव ही कम है, फिर जो कुछ है उसे अश्रद्धाने कुचल डाला। गंगास्नान, अतिथिसेवा किसी भी तरफ ध्यान दो। गंगास्नानका कितना महत्त्व था, वह अब नहीं रहा। गंगास्नान करके जो आते, उनका दर्शन करनेके लिये लोग जाते थे। इसी प्रकार जो बद्रिकाश्रम जाते, लोग गाँवके बाहर जाकर उन्हें लाते। आजकल जितने मिलते हैं, प्रायः अश्रद्धालु ही मिलते हैं। कल शामकी बात है—एक लड़केको मैंने देखा उसके बुखार था। मैंने कहा कोई जवान आदमी इसे कंधेपर रखकर पहुँचा दे तो ठीक है। सात, आठ आदमी थे। किसीने भी हाँ नहीं भरी। केवल लोचनरामजीने कहा मैं ले जा सकता हूँ। फिर नौकर ले गया। आप सोचें सेवाभाव कहाँ रहा।

प्रवचन-तिथि—ज्येष्ठ कृष्ण ६, रविवार, संवत् २००९, दिनांक ११-५-१९४४, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

लड़केको ले जाना बाकी थोड़े ही रहता, किन्तु श्रद्धा-प्रेम कहाँ रहा। मनुष्यके तो चाव चढ़ जाना चाहिये। वह कहे मैं ले जाऊँ, वह कहे मैं ले जाऊँ। तब पारी बाँधनी पड़े। उसमें जितने आदमी ले जायँ सबका कल्याण हो और यदि मन मारकर एक आदमी ले जाय तो कल्याणका सौवाँ हिस्सा भी उसे नहीं मिले। भगवान्‌के धाममें कोई जगहकी कमी थोड़े ही है। किन्तु हम पात्र नहीं हैं, इसलिये वहाँ हमारे लिये स्थान नहीं है। कोई अतिथिके रूपमें आये, भोजनके समयमें आये, दुर-दुर करके टुकड़ा डाले वह भी भोजन दिया ही और यदि उसे साक्षात् भगवान् समझे तो कभी उसके यहाँ इसी प्रकार भगवान् भी आ जायँ। रन्तिदेवके यहाँ और क्या बात थी, क्या वे पहले समझते थे कि चाण्डालके रूपमें भगवान् ही आये हैं।

मैंने यही सोचा कि भगवान्‌ने जो गीतामें कहा है यह बात आज पद-पदमें दीखती है।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥

(गीता १७। २८)

हे अर्जुन! बिना श्रद्धाके किया हुआ हवन, दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ शुभ कर्म है—वह समस्त 'असत्'—इस प्रकार कहा जाता है; इसलिये वह न तो इस लोकमें लाभदायक है और न मरनेके बाद ही।

नामके बारेमें मैं यह बात नहीं कहता कि वह असत् है। यह अवश्य कहता हूँ—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

नाम किसी प्रकार जपो, मंगल ही है, किन्तु श्रद्धासे जपे हुए नामका हजारों गुना, लाखों गुना लाभ अवश्य होगा। क्योंकि युक्ति और नीति यह बता रही है कि अन्तर अवश्य होना चाहिये। दान, यज्ञ, श्रद्धा, तप—सबकी यही दशा देख रहे हैं, कहीं दिखाऊपना, कहीं स्वार्थ आ गया, इन सबने नाश कर दिया। फल प्रत्यक्ष देखना चाहते हैं। चीज ठीक बनी या नहीं यह पहले देखो।

कल महात्माओंकी बात चल रही थी। कहीं महात्मा उपस्थित हों, उनकी उपस्थितिमें किसीके प्राण चले गये तो श्रद्धा हो तब तो परम गति होती ही है, अन्यथा उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है। स्वामीजीने एक श्लोक बताकर बताया कि श्रद्धा हो चाहे न हो, वस्तुसे लाभ होता ही है। ठीक है मेरा इसमें विरोध नहीं है, ऐसा हो सकता है। इससे भी अधिक माने तो कोई आपत्ति नहीं। महात्मा पुरुषोंकी ऐसी ही महिमा है। जितनी महिमा है हम उतना वर्णन नहीं कर सकते। पारसका मूल्य क्या आवे। एक महात्मा पुरुष यदि सारे संसारका भी कल्याण कर दें तो असम्भव बात नहीं है। इस कारण तो असम्भव है कि आजतक ऐसा कोई हुआ नहीं है। यदि होता तो हमलोग यहाँ नहीं होते। ध्यान देना चाहिये, बहुत मूल्यवान् तात्त्विक बात है, उसमें प्रविष्ट होकर समझना चाहिये। बात यह हो रही है कि आजतक ऐसा महापुरुष हुआ नहीं, किन्तु भविष्यमें ऐसा नहीं हो इसे हम नहीं मानते। जो काम आजतक नहीं हुआ, ऐसा काम भी हो सकता है। सबका कल्याण आजतक नहीं हुआ वह भी हो सकता है। ईश्वरकी कृपा और महापुरुषोंकी कृपासे हो सकता है। ईश्वरके नामसे भी हो सकता है। हमारी आपकी आजतक

मुक्ति नहीं हुई तो अब हो सकती है, नहीं हो सकती तो उसके लिये चेष्टा क्यों करते हो? एकका हो सकता है तो लाखोंका भी उद्धार हो सकता है।

किसीको यह विश्वास हो कि महात्माओंका दर्शन होनेसे कल्याण हो ही जाता है। चाहे विश्वास हो चाहे नहीं हो किन्तु इस बातपर जिसका विश्वास हो उसका तो कल्याण हो ही जाता है। श्रद्धा जब इतने लाभकी चीज है, फिर हमलोगोंके हृदयमें श्रद्धा क्यों नहीं होती। आप उपाय पूछें तो यही है कि श्रद्धासे माननेवालोंका कल्याण हो जाता है। मन्दिरमें जो मूर्ति है और जो यह पत्थर है, दोनों ही पत्थर हैं। किन्तु भीतरमें जो मूर्ति है उसमें श्रद्धा है, श्रद्धालुके लिये वह मूर्ति साक्षात् शिव है। यह पत्थर शिव नहीं है। वास्तवमें चाहे उस मूर्तिमें शिव नहीं हों, किन्तु श्रद्धालुके लिये तो शिव ही हैं। महात्मा पुरुषकी उपस्थितिमें चाहे वस्तुतः गुण न हो, किन्तु श्रद्धा करनेवालेका तो कल्याण हो ही जाता है। श्रद्धाकी ओर पक्ष रखना चाहिये। कोई आदमी कहे कि महात्माके दर्शन, स्पर्श, भाषणसे भी कल्याण हो जाता है जैसे ईश्वरका करनेसे हो जाता है। वास्तवमें महात्माके दर्शन, स्पर्श, भाषणसे कल्याण होता है या नहीं, यह तो मुझे पता नहीं, किन्तु इस प्रकार श्रद्धा करनेवालेका तो कल्याण हो जाता है। एक महात्मासे लाखों, करोड़ोंका कल्याण हो सकता है। एक दीपकसे लाखों-करोड़ों दीपक जल सकते हैं। आखिरी संख्या नहीं बतायी जा सकती। जो बताये वह मूर्ख है। इसी प्रकार एक महात्मासे सारे संसारका कल्याण हो सकता है। फिर होता क्यों नहीं? इच्छा नहीं है। दीपक अपने-आप जलता है क्या? या दीपककी बातीको पानीसे भिगोये तो नहीं

जलता। चेष्टा करता रहे तो जलेगा अवश्य। पानी है, इसलिये चड़-चड़ करता है। यहाँ चड़चड़ात अश्रद्धा है, पानीसे दीपक जलता नहीं। श्रद्धामें चड़चड़ात नहीं होती। दीपक ठीक हो, तेल भी ठीक हो, बत्ती भी ठीक हो, हवा भी नहीं हो तो काम झट हो जाय। किन्तु पिण्ड नहीं छोड़ना चाहिये। दीपक जलाना ही है। कानून कहता है कि दीपकसे दीपक जलेगा। एक महात्मा सारे संसारका कल्याण कर सकता है, यह बात हम मानते हैं। एक गंगा सारे संसारका कल्याण कर सकती है। ईश्वर सब दुनियाका कल्याण कर सकते हैं।

गंगा कोई महात्मासे कम दर्जेकी चीज नहीं है। किन्तु महात्माका प्रकरण आयेगा वहाँ महात्माको गंगासे बढ़कर बता देंगे। गीताका प्रकरण आयेगा तो गीताको भगवान्‌से बढ़कर बता देंगे। प्रशंसा अपने स्थानपर है। सब स्थानोंपर तो सबसे बढ़कर परमात्मा ही हैं।

शिवाङ्कमें आप हमारा लेख पढ़ेंगे, वहाँ शिवजीसे बढ़कर कोई नहीं है। यह मेरा सिद्धान्त नहीं है, अपितु यह शास्त्रोंका सिद्धान्त है। शास्त्रोंको देखो, जहाँ जिसका प्रकरण है उसकी स्तुति सर्वोपरि है। इसी आशयको लेकर व्यासजीने अठारह पुराण बनाये। जो पुराण जिसका है, उसमें उसे ही सर्वोपरि बताया है। वास्तवमें सत् चित् आनन्दघन परमात्मा ही गणेश, शिव, शक्ति हुए हैं। मैं तो कहता हूँ कि जीवन्मुक्त महात्माको भी परमात्माकी पदवी दी जाय तो कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि उनकी आत्मा तो परमात्माको प्राप्त हो ही गयी। उनका शरीर परमात्मा नहीं है।

ईश्वर जन्मते-मरते नहीं, वे तो अवतरित होते हैं तथा उनका तिरोभाव होता है। परमात्मविषयक बात सबसे निराली

है। परमात्माका तात्त्विक प्रकरण अलौकिक है। परमात्मा एक कालमें लाख जगह अवतार ले सकते हैं। वे स्वतन्त्र हैं। वह धातु ही अलग है।

जो महात्मा पूर्णब्रह्म परमात्मामें लीन हो गये, इस न्यायसे उनकी प्रशंसा पूर्ण ब्रह्म परमात्माकी ही है। नित्य-निरन्तर भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८।१४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

यह औषध सेवन करना है, यह उपासनाका मार्ग है। यह औषध सबसे बढ़कर है। बीमारी मालूम पड़ गयी, अब केवल सेवन करना है। औषध आप खा लें, बीमारी हमारी मिट जाय यह तो होनेका नहीं है। आप कहें कि श्रद्धासे यह विश्वास कर लें कि अमुक व्यक्ति हमारे बदलेमें साधन कर लेगा और हमारा कल्याण हो जायगा। ठीक है, किन्तु इस प्रकारकी श्रद्धा होनी कठिन है। श्रद्धाकी बात अद्‌भुत है। प्रकृतिके विरुद्ध कोई बात कहे, वह भी हम मान सकते हैं, श्रद्धाकी ऐसी ही बात है। अग्निका स्वभाव गर्म है, किन्तु प्रह्लादके लिये वह शीतल हो गयी। अर्जुनने मोहनास्त्र चलाकर सबको मोहित कर दिया। बात थी कि पहले मन्त्रोंमें श्रद्धा थी, विश्वास था, इसलिये उनमें शक्ति थी। अब मन्त्रोंमें श्रद्धा नहीं रही, बाणोंकी पूजा किया

करते थे। शिवजीने मन्त्र सिखा दिया, पाशुपतास्त्र दे दिया, अस्त्रका प्रयोग बता दिया, चाहे तिनकेका अस्त्र बना लो। नर-नारायणके ऊपर इन्द्रने चढ़ाई कर दी। आसनसे तिनका निकालकर उसीका अस्त्र बनाकर छोड़ दिया। मन्त्रोंमें शक्ति अभी भी है, किन्तु श्रद्धा नहीं है। श्रद्धासे जो कुछ कहो उसे हम माननेको तैयार हैं। इसीलिये भगवान् गीतामें बार-बार श्रद्धा-श्रद्धा पुकार रहे हैं, किन्तु हम ध्यान नहीं देते। श्रद्धा हो तो परमात्माकी प्राप्तिमें विलम्बका क्या काम है। श्रद्धाकी कमीके कारण हमारी यह दशा हो रही है। भगवान्ने कितनी महिमा बतायी—

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥
अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥

(गीता ९। २)

यह विज्ञानसहित ज्ञान सब विद्याओंका राजा, सब गोपनीयोंका राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला, धर्मयुक्त, साधन करनेमें बड़ा सुगम और अविनाशी है।

हे परंतप! इस उपर्युक्त धर्ममें अश्रद्धारहित पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्युरूप संसारचक्रमें भ्रमण करते रहते हैं।

परमात्माकी प्राप्तिका अधिकार मिलकर भी उससे वंचित रह जाते हैं। हमारी मूर्खताके कारण हम वंचित रह रहे हैं। ईश्वर और महात्माओंमें जितनी श्रद्धा की जाय थोड़ी ही है, फल भी प्रत्यक्ष है। यह श्रद्धाकी बात कही।

ये सब बातें आप एकान्तमें जाकर विचारेंगे तो इसका तत्त्व खुलेगा। श्रद्धा किस प्रकार हो इस मार्गमें चलना चाहिये।

मनुष्यके लिये ऐसी कोई चीज नहीं जो असम्भव हो। विलम्ब क्यों होता है? आपलोग उसके लिये प्रयत्न नहीं करते। ईश्वरका अपने ऊपर हाथ समझकर तत्परतासे प्रयत्न करना चाहिये। आपको तो केवल निमित्तमात्र बनना है। परोसी हुई थाली है, आपको तो केवल खाना है। वह भी कोई विश्वास कर ले तो भगवान् आकर खिला दें। अजगर भी जीते हैं, किन्तु डटे रहना चाहिये। इसी प्रकार भगवान्पर श्रद्धा-विश्वासकी आवश्यकता है। विचलित नहीं होना चाहिये। आप यह विश्वास कर लें कि हम तो बैठे हैं, भगवान् ही स्वयं आकर रसोई बनायें, वे ही हमारे मुँहके अन्दर ग्रास दें। आपका विश्वास ठीक होगा तो भगवान् ऐसा ही करेंगे, द्रौपदीने सब कुछ किया, सबसे भीख माँग ली। आखिरमें नग्न होनेकी तैयारी हो गयी, इज्जतकी धूल हो गयी। जिस प्रकार सिसकता हुआ प्राण रह जाय, उस प्रकार कथनमात्रकी इज्जत रह गयी। उस समय वह भगवान्की शरण हुई तो भगवान् उसी समय तैयार हो गये। गयी हुई इज्जत वापस आ गयी। दुष्ट दुःशासनकी बड़ी बेइज्जती हुई।

जाको राखे साइयाँ मार सके ना कोय।
बाल न बाँका कर सके जो जग बैरी होय॥

जबतक आप भगवान्पर निर्भर नहीं रहेंगे तबतक भगवान् भी तमाशा देखते हैं। भगवान्पर घटा लो चाहे महात्मापर घटा लो, निर्भर होना चाहिये। हमारेमें वह विश्वास नहीं है इसलिये डूब रहे हैं।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥

(४।४०)

विवेकहीन श्रद्धारहित और संशययुक्त मनुष्य परमार्थसे अवश्य भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे संशययुक्त मनुष्यके लिये न यह लोक है, न परलोक है और न सुख ही है।

तीन दोष धँसे हुए हैं, इन्हें हटा लो फिर आपका जीवन बदल जायगा। जिस-किस प्रकार भी हो इन्हें हटाओ। परमात्माकी प्राप्ति होनेमें फिर विलम्ब नहीं होगा। कुआँकी तरह तुम खोदते रहो। कठिनाईकी ओर ध्यान ही मत दो। जबतक शक्ति रहे पत्थर निकालते रहो। सिद्धान्त रखो कि जमीनमें जल रहता है, वह निकलेगा अवश्य, तुम्हारी जमीन ही पथरीली है। जबतक जान रहे पिण्ड मत छोड़ो। खोदनेमें तो तुम्हारी आयुमें शायद पानी नहीं भी निकले, किन्तु यह कुआँ तुमको पानी पिलाकर ही छोड़ेगा।

नारायण नारायण

भावकी महत्ता

शास्त्रोंमें बहुत-सी बातें आती हैं। छोटी-छोटी क्रियाका फल परमात्माकी प्राप्ति बतलाया जाता है। एकादशीका फल आता है—भगवान्‌के परमधामकी प्राप्ति, भगवान्‌के नामसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है, दानसे मुक्तिका प्रकरण आता है। यह सब देखकर लोगोंको भ्रम हो जाता है कि छोटी-सी चीजसे इतनी बड़ी चीजकी प्राप्ति बता दी जाती है। यह क्या बात है? गीतामें भी कहा है—

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(गीता २। ४०)

बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे रक्षा कर लेता है।

ब्राह्मी स्थिति अन्तकालमें हो गयी तो बेड़ा पार है, और भी बहुत-सी बातें आती हैं—

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

(गीता ८। ६)

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहा है।

बड़ा जबरदस्त कानून है। फोटो उतारनेवाला कैमरा लेकर बैठा है। अन्तिम क्षणकी फोटो कैमरेमें आती है, उस समय जो शक्ल होती है। इसी प्रकार सूक्ष्म शरीरका फोटो उतरता है।

प्रवचन-तिथि—ज्येष्ठ कृष्ण ६, संवत् २००१, दिनांक ११। ५। १९४४ दोपहर, रविवार, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

फोटोमें छाया पकड़ी जाती है, इसी प्रकार अन्तःकरण रूपी दर्पणमें छाया पकड़ी जाती है।

इसी प्रकार छोटी-छोटी क्रियाका जो फल बतलाया है, उसमें समझनेकी बात है। वास्तवमें क्रियाकी प्रधानता नहीं है, अपितु भावकी प्रधानता है। भगवान्‌के राम-नामको एक आदमी बोल-बोलकर जप करता है, दूसरा एक आदमी श्रद्धा-प्रेमसे उसीका उच्चारण करे तो एक ही नामसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। उसका माहात्म्य इतना बढ़ जाता है। माहात्म्य बढ़नेमें तीन चीजकी बड़ी आवश्यकता है— श्रद्धा, प्रेम और अन्तकाल। प्रेमसे यदि हम बुलायें तो एक नामसे ही भगवान् प्रकट हो सकते हैं। गजेन्द्र, द्रौपदीकी तरह विश्वास होना चाहिये, फिर देखो विलम्ब होता है क्या? भावसे इतनी मूल्यवान् चीज बन जाती है। रन्तिदेवके यहाँ भगवान् प्रकट हो गये। उसमें भावकी ही प्रधानता थी। भाव ऊँचे कोटिका हो तो परमात्माकी प्राप्ति करा सकता है। यज्ञ करो, दान दो, तप करो, कुछ भी करो, निष्कामभाव होना चाहिये। थोड़ा भी धर्मका पालन महान् भयसे तार देता है। एक दिन भी यज्ञ करे, थोड़ा भी दान करे, एक बार भी गंगास्नान करे, एक बार भी भगवान्‌का स्मरण करे, इस प्रकार थोड़ा भी कर्म महान् भयसे तार देता है। वास्तवमें भाव निष्काम होना चाहिये। हमलोगोंके रोम-रोममें स्वार्थ भरा हुआ है। इस कारण हमारा बड़ा-बड़ा प्रयत्न भी कल्याण नहीं कर रहा है। हमलोग मान-बड़ाई चाहते हैं। हर एक काममें स्वार्थ भरा पड़ा है। क्रिया करनेसे पहले उसका फल देखते हैं, निष्कामभाव कहाँ है? जिस प्रकार स्वार्थके लिये चेष्टा करता है, उसी प्रकार यदि स्वार्थरहित क्रिया करे तो देखो उसका क्या फल होता है। क्रिया शास्त्रीय होनी चाहिये और भाव उच्चकोटिका

होना चाहिये। भाव ही प्रधान है। वृक्षके रूपमें हम भगवान्‌को जल पिला रहे हैं, गधेके रूपमें हम भगवान्‌को जल पिला रहे हैं। जब तुम्हारे भगवान्‌का भाव होगा तो देखते ही साष्टांग प्रणाम करोगे। जिन्होंने गधेको भगवान् समझा है, उनको भगवान्‌की प्राप्ति हो गयी।

एकनाथजी महाराज गंगोत्रीसे जल लेकर रामेश्वरम्‌में जल चढ़ानेके लिये चले। रास्तेमें एक गधा प्यासा देखा। देखकर हृदयमें यह बात पैदा हुई कि ये तो साक्षात् रामेश्वर ही हैं। गधेको ही जल पिला दिया, गधेमें ही भगवान्‌के दर्शन हो गये। उनका भाव था कि जिस प्रयोजनके लिये मैं जल लाया था, वह सिद्ध हो गया। भगवान् जल यहाँ माँग रहे हैं, इसलिये वहीं जल अर्पित कर दिया। नामदेवजी कुत्तेके पीछे घीकी कटोरी लेकर दौड़े, महाराज घी चुपड़ लीजिये। आज कुत्ता रोटी लेकर दौड़े तो लाठी लेकर पीछे दौड़ते हैं। भाव प्रधान है। किसी भी प्रकार भाव ऊँचा हो सके, वह चेष्टा करनी चाहिये।

शास्त्रोंमें बताया है— **मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव।** अपने माता-पिता, गुरु, अतिथिको ईश्वर माननेवाला हो, स्त्री अपने पतिको ईश्वरके समान समझनेवाली हो। यदि इस प्रकार समझकर सेवा हो तो कल्याणमें विलम्ब नहीं है। विलम्ब इसलिये हो रहा है, क्योंकि भाव नहीं है। संसारमें जो कुछ चीज है भाव ही है, हृदयका भाव सुधारो। फिर क्रियाका सुधार तो स्वतः ही हो जायगा। आपको जो परिश्रम करना हो, हृदयके भाव सुधारनेमें करो। भाव अपना उच्चकोटिका बनाना चाहिये। भावसे भगवान् प्रकट हो जाते हैं। एक बार बुलानेके साथ ही आ जाते हैं।

नारायण नारायण

सबको परमात्मा समझें

मेरे बाहर जानेके दो कारण हैं—एक तो जिस स्थानमें सब आदमी यहाँकी तरह सत्संग चाहें, उस स्थानमें जानेकी उपरामता नहीं है। कोई बाधा नहीं हो तो जानेमें आपत्ति नहीं। जैसे भगवानदास सिंहानियाने कहा कि एक बार बम्बई आयें। ऐसे ही एक-दो भाई और भी कहे, उन्हें भी यह कहा गया कि समयपर देखा जायगा, पर उत्सवका डर लगता है। मेला, खेला, उत्सव— इनमें जानेकी उपरामता ही रहती है। जैसे कुंभका मेला है, यदि आप कहें कि कुंभका मेला तो और अच्छा है, अच्छे-अच्छे संत इकट्ठे होते हैं। कुरुक्षेत्रमें सूर्यग्रहणपर आनेके लिये लोगोंने कहा। वास्तवमें तीर्थस्थानकी दृष्टिसे जाय तो अपनी सुविधासे जाय, मेला-खेलामें नहीं। वहाँ झंझट-सा मालूम देता है, वहाँ साधन-भजन नहीं हो पाता।

उत्सवमें जानेकी अपेक्षा मुझे पंचायत करना अच्छा लगता है ताकि लोग मुकदमेबाजीसे बचें। यदि कहो दो-तीन घंटे व्याख्यान देना ठीक है या पंचायती। मैं तो कहीं रहूँगा तो व्याख्यान ही दूँगा। उत्सवमें न जानेकी सौगन्ध तो नहीं ली है, परन्तु निर्णय यह किया कि उत्सवमें जाना कोई लाभकी चीज नहीं है। वहाँ जानेपर कहना पड़े कि ऐसे मौकेपर हमारा समय रखो, जिस समय अधिक व्यक्ति इकट्ठे हों, यह कहना लज्जाकी बात है। वहाँ महारथी लोग इकट्ठे होते हैं, वहाँ क्या लाभ है। इतना लाभ है कि प्रशंसा खूब होती है। भाटकी तरह प्रशंसा

प्रवचन-तिथि— ज्येष्ठ कृष्ण ७, संवत् २००१, सोमवार, दिनांक १२-५-१९४४, प्रातःकाल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

करते हैं। प्रशंसाके पुल बाँध देते हैं। संसारमें विज्ञापन करना हो तो वहाँ जाय। जिन्हें मान-बड़ाईकी इच्छा न हो वे मेला-उत्सवोंमें क्यों जायँ। इससे यही तात्पर्य निकला कि वहाँ जाना उचित नहीं। आपसे भी यही कहना है कि आपलोग इस विषयमें हमारी सहायता ही करना। चन्दा देना हो तो दे दे। रुपयेसे काम चल जाय तो फिर वहाँ नहीं जाय।

असली बात यह है कि सत्संगके प्रचारके लिये कहीं जाना हो, उसमें अरुचि नहीं है। अब श्रद्धाकी बात कही जाती है, वही मूल्यवान् है। समझमें आनी चाहिये। करना-कराना कुछ नहीं है। समझनेसे ही धारण हो जाय। नहीं समझमें आये तो बैठे रहो। कल आपको बताया था कि यह वटवृक्ष है, इसमें लोग पानी डालते ही हैं। वट समझकर पानी पिलाते हैं। एक व्यक्ति वृक्ष समझकर वर्षोंतक पानी पिलाये तो उस वर्षों पानी पिलानेवालेसे वह बढ़कर है जो एक दिन भगवान् समझकर पानी पिलाये।

एकनाथजीने तो गधेको साक्षात् रामेश्वर समझकर पानी पिला दिया, उन्हें भगवान्‌की प्राप्ति हो गयी। शास्त्रके हिसाबसे यह वटवृक्ष परमात्मा है।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७। १९)

बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है—इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है। भगवान् कहते हैं—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥

(गीता १०। २०)

हे अर्जुन! मैं सब भूतोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतोंका आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ।

भगवान् ही इस वृक्षके रूपमें स्थित हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

यह वृक्ष अचरके रूपमें है, सेवकका काम क्या है? सेवा करना। जल पिलाना सेवा है, इस भावसे भावित होकर जल पिलाया जाय तो भगवान्‌को जल पिलाना है। वृक्षको भगवान् समझकर प्रणाम करे तो वह भगवान्‌को ही प्रणाम करना है। युक्तिसे खूब विचार कर लो। श्रुति कहती है सारे जीवोंके हृदयमें परमात्मा विराजमान हैं। वृक्ष भी जीव है, इसमें भी परमात्मा विराजमान हैं ही। भगवान्‌ने बताया है सारे यज्ञ, तपोंका भोक्ता मैं ही हूँ।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २९)

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपोंका भोगनेवाला, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है।

अपने घरपर कोई अतिथि ब्राह्मण आ जाय, भगवान् समझकर उसकी सेवा करें तो वह भगवान्‌की ही सेवा है। रास्ते चलते वृक्ष आ गया, गाय आ गयी, गधा आ गया, उसे भगवान् ही समझे। भगवान् ही अनेक रूपसे बने हुए हैं। सारा संसार

भगवान्‌का स्वरूप है, ऐसा समझकर सबकी सेवा करना भगवान्‌की ही सेवा है।

एक नम्बर बात तो है सबको परमात्मा समझे। यह नहीं हो तो दो नम्बरमें सबको श्रेष्ठ समझे, यह भी नहीं हो सके तो अपनेसे श्रेष्ठ समझे। यह भी नहीं सके तो किसीका अपमान तो न करे। एक कविने कहा है—

आये थे कुछ लाभको खोय चले सब मूल।
फिर जाओगे सेठ पा पल्ले पड़ेगी धूल॥

हमलोग मनुष्य-शरीरमें आये हैं लाभके लिये, लाभ लेकर ही जाना चाहिये। किन्तु जो मूल गँवाकर जायगा, उसके पल्ले तो धूल ही पड़ेगी। परमात्माने दया करके मनुष्य-शरीर दे दिया, यह उद्धारके लिये मिला है। मनुष्यकी आयु जो दी, यह मूल धन है। इसे पाकर अपना और दूसरोंका कल्याण कर दिया यह तो मूल धन भी कायम रख लिया तथा कमाई भी हो गयी, किन्तु अपना तथा किसीका भी कल्याण नहीं किया, यह मूलधन गँवा दिया। यह खोकर यमराजके पास जाओगे तो धूल पल्ले पड़ेगी। हमलोग यहाँ आये हैं, भगवान्‌के भजन-ध्यानमें जो समय बीतता है वह तो बड़ा उत्तम है, बाकी समय धूलमें जाता है। झूठ, कपट जो करते हैं वह तो ऋण करना है। मालिक इससे बहुत नाराज होगा। यदि आप कहें मनुष्य-शरीर क्या प्रारब्धसे नहीं मिलता, देखो भगवान् क्या कहते हैं—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

आचरणोंकी ओर ध्यान दो तो मनुष्य-शरीर नहीं मिल सकता, किन्तु भगवान् बड़े दयालु ठहरे, वे बड़े सुहृद् हैं। प्रेम और दया करके मनुष्य-शरीर देते हैं। अनन्त जीव हैं, मनुष्य तो

समुद्रमें एक लहरकी तरह हैं। यदि अपने क्रमकी ओर देखें तो करोड़ों वर्षोंमें फिर मनुष्यका शरीर मिले। आचरणोंकी ओर देखें तो वही बात है। भगवान्‌ने कृपा करके मनुष्य-शरीर दिया है। बिना हेतु कृपा करनेवाले केवल एक भगवान् ही हैं—

स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥
हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

हे प्रभो! स्वार्थ त्यागकर हित करनेवाले या तो आप हैं या आपके प्यारे सेवक, बाकी तो इतिश्री है।

सुर नर मुनि सबकै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

भगवान् और उनके प्यारे भक्त इन्हें छोड़कर सब अपने स्वार्थको लेकर ही प्रेम करते हैं। यह बात अपने समझमें आ जाय तो क्या एक मिनट भी हम भगवान्‌को छोड़ सकते हैं। जो इस प्रकार समझ लेगा वह फिर निरन्तर भगवान्‌को ही भजेगा।

मनुष्यका शरीर पाकर जो विषयोंमें मन लगाता है, वह अमृतके बदले विष लेता है। पारसको छोड़कर चिरमियोंको लेता है।

चारों ओर बारूद और विष पड़ा है। एक कक्ष खाली है। इसमें न आगका, न विषका प्रभाव होता है। समझदार व्यक्ति क्या उस कक्षको छोड़कर जायगा? कक्ष है परमात्मा। यदि बचना चाहो तो परमात्माकी शरण लेनी चाहिये।

परमिट तो हमें मिल गया चाहो तो इसे फाड़ दो, चाहो तो परमात्माको प्राप्त कर लो। मनुष्यका शरीर ही परमिट है। इस मनुष्य-शरीरको पाकर चाहे परमात्माको प्राप्त कर लो, चाहे परमिट रूपी शरीरको फाड़कर फेंक दो। परमात्माके सिवाय दूसरे कामोंमें इस शरीरको लगाना ही परमिट फाड़कर फेंकना है।

कोई कहे कि अमृत तो मीठा ही होता है, किन्तु क्या

भगवान्‌का भजन भी इसी तरहका है? हाँ, है तो ऐसी ही चीज, फिर तो पान करता ही रहे, छोड़े ही क्यों? आनन्द तो चाहता ही है, फिर क्यों उसे छोड़ता है। मिश्री मीठी है, खानेके समय मीठी लगती है, किन्तु जिसके पित्तकी बीमारी हो उसे खारी लगेगी, उस मिश्रीको चूसता रहे तो बीमारी मिटनेसे मीठी लगने लग जायगी। भगवान्‌का भजन मीठा नहीं लगता तो बीमारी है। रोटी मीठी होती है, किन्तु बुखारमें मीठी नहीं लगती। तुलसीदासजी कहते हैं—

तुलसी पिछले पापसे हरि चर्चा न सुहाय।
जैसे ज्वरके जोरसे भोजन की रुचि जाय॥

मिश्री खारी लगती है तो पित्तकी बीमारी अधिक है, इसी प्रकार भजन, ध्यान, सत्संग अच्छा नहीं लगता तो उसके बीमारी है। उसका उपाय है कि भजन-ध्यान करता रहे, आप ही अच्छा लगेगा। ऐसा सुख होगा जो सुख संसारके किसी भी पदार्थसे नहीं हो सकता। साधन कालमें भी आपको यह बात प्रतीत होने लगेगी। थोड़ी-सी बीमारी मिटनेसे ही आपकी यह अवस्था हो जायगी, अमृत इसके सामने धूलके समान भी नहीं है। आरम्भमें तो आपको विश्वास करके ही लगना होगा। आपको भजन, ध्यान, सत्संग अच्छा नहीं लगता, इस बातको भूल जाओ। विश्वास करके करो। आगे जाकर वह अच्छा लगेगा। क्योंकि यह चीज ऐसी ही है, इसीका नाम श्रद्धा है। चीज अच्छी नहीं लगे तो भी अच्छी मान लो। वैद्यकी दवाई खारी लगती है। वैद्य कहता है आँख मींचकर पी जाओ। परिणाम अच्छा है।

इसी प्रकार तुम्हारी बीमारीके लिये इससे बढ़कर कोई औषध है ही नहीं। इससे बढ़कर कोई पुस्तक, वैद्य दूसरी औषध

बताते हैं तो उनकी भूल है।

औषध है— भजन, ध्यान, सत्संग।

भजन— नामका जप।

ध्यान— परमात्माका लक्ष्य रखकर उसका मनन।

सत्संग— स्वाध्याय और सत्पुरुषोंका संग।

इसके समान आपकी बीमारीके लिये कोई औषध है ही नहीं। दूसरा कोई दूसरी औषध बताता है या तो वह मूर्ख है या ठग है। यह सबसे बढ़कर औषध है। बीमारीका निदान हो गया, औषधका निदान हो गया, अब केवल सेवन करना है। यदि आप कहें बहुत दिन सेवन करते हुए हो गये, बीमारी नहीं मिटी। इसका उत्तर है औषध ज्यादा सेवन नहीं की, अपितु आपने कुपथ्य ज्यादा किया है और मात्रा भी आप पूरी नहीं लेते। पूरी मात्रा है निरन्तर स्मरण करना।

पूरी मात्राकी कमी है, क्योंकि आपके बीमारी टिक रही है। गयी सो गयी, अब तो यही सिद्धान्त बना लो कि भगवान्‌को एक मिनट भी नहीं छोड़ना है। प्राणोंको छोड़ना पड़े तो छोड़ दो, किन्तु भगवान्‌को मत छोड़ो। भगवान्‌को आप इतना आदर देंगे तो भगवान् उसी समय तैयार हैं। भगवान्‌का मूल्य आप दे नहीं सकते। उनका असली मूल्य तो है— निष्काम प्रेम, निष्काम प्रेमसे वे खरीदे जा सकते हैं। भगवान्‌ने छूट दे दी कि निष्काम प्रेम न हो तो सकाम ही करो, तीसरी और छूट दे दी कि प्रेमसे नहीं हो तो स्मरण ही करो, और भी छूट दे दी कि निरन्तर नहीं हो तो अन्त समयमें ही करो, परन्तु यह छूट स्वीकार नहीं करनी चाहिये। बादल देखकर घड़ा नहीं फोड़ना चाहिये।

परमात्माका भजन, ध्यान कामकी चीज है। कामकी चीज

छोड़नी नहीं है। बादल देखकर जो घड़ा फोड़ते हैं, उन्हें अधिकांशमें पश्चात्ताप ही करना पड़ता है। बरसते समय घड़ा मिलेगा या नहीं, क्या परिस्थिति होगी? सँभाल घड़ेकी ही रखे। घड़ा किसी अंशमें बादलकी पूर्ति करता है, किन्तु बादलोंको बुला नहीं सकता, किन्तु निरन्तर भजन-ध्यानवाले घड़ेमें भगवान्‌रूपी बादलको बुलानेकी शक्ति है। यदि आप कहें कि हम निरन्तर भगवान्‌का स्मरण करें और अन्तकालमें भगवान् यदि नहीं आयें? मत आओ, आपको भगवान्‌की प्राप्ति हो ही जायगी। भगवान्‌के वचन हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

अन्तकालके पहले ही कार्य समाप्त हो जायगा। सबसे बढ़कर श्रद्धा करनेकी बात यह है। इस बातके लिये इकरार किया जा सकता है। हजारों आदमियोंके बीचमें कहा जा सकता है। भविष्यकी बात भी कही जा सकती है। यदि कहो तुम्हारी बात झूठ होगी तो पहले भगवान्‌की झूठ होगी, पीछे हमारी होगी। वास्तविक बात तो यह है कि भगवान्‌की बात झूठी हो नहीं सकती, यदि झूठ ही हो तो फिर भगवान् ही क्या? इसमें कहीं धोखेका काम नहीं है। बेधड़क होकर करार किया जा सकता है। निरन्तर भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये। जागनेके

समय आप कर लें तो सोनेके समय भगवान् स्वतः ही करवा लेंगे। इसमें कोई प्रतिबन्धक नहीं है। आपका इतना ही दायित्व है कि निरन्तर भगवान्‌का स्मरण रखो। जो कुछ आपमें बुराइयाँ हैं, आचरणोंकी कमी है, सबकी पूर्ति इस एकसे ही स्वतः हो जायगी। यह निश्चित बात है। भगवान्‌ने कहा है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

भगवान् योगक्षेम वहन करते हैं, इसमें भगवान्‌का निहोरा नहीं है। निरन्तर भगवान्‌का भजन-ध्यान ही योगक्षेम वहन करनेवाला है। जो निरन्तर भजन-ध्यान करेगा, उसका योगक्षेम स्वतः ही वहन हो जायगा। भगवान् अपने घर रहें। जो गुण भगवान्‌में हैं, वे आपमें उनके भजन-ध्यानसे आ जायँगे। भगवान्‌का नाम, भगवान्‌का स्वरूप, भगवान्‌के गुण, भगवान्‌का ज्ञान एक ही चीज है, इसलिये श्रद्धा करने लायक एक यही चीज है, फिर भी इस काममें नहीं लगकर आपकी दूसरे काममें वृत्ति हो जाती है तो फिर यह श्लोक लागू पड़ेगा—

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥

(गीता ९। ३)

हे परन्तप! इस उपर्युक्त धर्ममें श्रद्धारहित पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्युरूप संसारचक्रमें भ्रमण करते रहते हैं।

भगवान्‌की प्राप्तिका मिला हुआ परमिट रद्द करके कैद होगी। धन-सम्पत्ति चाहे नष्ट हो जाय, घरवाले रुष्ट हो जायँ, किन्तु भगवान्‌का स्मरण निरन्तर होना चाहिये। इस प्रकारका जोर रखकर भगवान्‌का स्मरण निरन्तर करना चाहिये। कोई भी काम अतिशय श्रद्धासे करो तो तुरन्त ही बेड़ा पार है। बिना श्रद्धाके भजन-ध्यान करो उससे भी लाभ है। जाननेसे ही भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २९)

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपोंका भोगनेवाला, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंका सुहृद् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है।

यह बात समझमें आ जाय कि भगवान् सुहृद् हैं तो आप भी सुहृद् हो जायँ। आपका मालिक इतना सुहृद् है तो फिर आपको भय-चिन्ता किसलिये हो।

हमलोग जो कुछ सेवा करते हैं, भगवान् ही उस रूपमें सेवा स्वीकार करनेवाले हैं, इस भावसे सेवा करें तो भगवान्‌की प्राप्ति हो जाय। इसमें थोड़ा करना पड़ा और सर्वलोक महेश्वर हैं, ऐसा माननेसे भजन होने लग जाय। निरन्तर भजन होने लगे तो भगवान्‌की प्राप्ति हो ही जाय। भगवान् सुहृद् हैं, उनका प्रेम मेरेपर है, इस प्रकार भगवान्‌के गुणोंकी ओर दृष्टि गयी और शान्ति मिली। इसमें करना कुछ नहीं है। एकमें थोड़ी सेवा करनी पड़ी, दूसरेमें भजन करना पड़ा, तीसरेमें करना कुछ नहीं पड़ा।

भरतजी कह रहे हैं सौ करोड़ जन्मोंमें भी जिसका उद्धार न हो, ऐसा पापी भी हो, किन्तु भगवान्‌के गुणोंकी ओर ध्यान गया तो शान्ति मिल गयी। इसलिये हर समय भगवान्‌के गुणोंकी ओर देखते रहना चाहिये।

भगवान्‌के स्वरूपकी ओर देखनेसे भी कल्याण और उनके गुणोंकी ओर देखनेसे भी कल्याण और उनके नामकी ओर देखनेसे भी कल्याण। 'राम' यह तो देख ही सकते हैं, नहीं देख सके तो श्वाससे नामजप करो। वह भी नहीं हो सके तो बोल-बोलकर ही करो, करना चाहिये। भजन नहीं कर सको तो गुणोंकी ओर ध्यान करो या स्वरूपको पकड़ो। कोई-न-कोई चीज पकड़ लो। नहीं तो डूबोगे।

अपारसंसारसमुद्रमध्ये सम्मज्जतो मे शरणं किमस्ति।
गुरो कृपालो कृपया वदैतद्विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका॥

(प्रश्नोत्तरी १)

प्रश्न—हे दयामय गुरुदेव! कृपा करके यह बताइये कि अपार संसाररूपी समुद्रमें मुझ डूबते हुएका आश्रय क्या है?

उत्तर—विश्वपति परमात्माके चरणकमलरूपी जहाज।

भगवान्‌के चरणोंका ध्यान ही संसारसागरसे पार होनेकी दृढ़ नौका है।

भगवान्‌के किसी अंगको या नामको या गुणोंको किसीको याद रखो, उसके सामने फिर संसारसागर कोई चीज नहीं है। हनुमान्‌जी महाराज भगवान्‌का नामस्मरण करके लंका पार गये, भगवान्‌के भजनकी इतनी महिमा है। इसलिये हमें निरन्तर भजन-ध्यान ही करना चाहिये। फिर कोई चिन्ता नहीं है।

एक तात्त्विक बात और बतायी जाती है, वह समझमें आ

जाय तो बेड़ा पार है। परमात्माका तत्त्व समझमें आ जाय तो समझनेके साथ परमात्मा बन जाय। महात्माका तत्त्व समझमें आ जाय तो उसी समय महात्मा बन जाय। समझा तभी समझना चाहिये, जब वह उस तरह बन गया।

परमात्मा क्या चीज है? और महात्मा क्या चीज है? गीतामें भगवान्‌ने महात्माका यह लक्षण बताया है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७। १९)

बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है—इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।

जो कुछ है सब वासुदेव है यह परमात्माका तत्त्व है। यह समझमें आ जाय तो परमात्माकी प्राप्ति हो जाय। इस प्रकार समझनेवाला महात्मा है। इस प्रकार समझनेवाला पुरुष हमें मिल जाय और हम उसे जान जायँ तो हम महात्मा बन जायँ। समझनेके साथ ही हो जायँ। परमात्माका ज्ञान क्या है? यह बता ही दिया। सब कुछ परमात्मा है यही परमात्माका ज्ञान है। अपनी बुद्धिसे यह संसार दीखता है, यह हटाकर परमात्मा मानने लगे। नहीं दीखे तो भी निश्चय करे तो पूर्ण निश्चय हो जायगा और परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। मन्दिरमें भगवान्‌की मूर्ति है, जितने अंशमें हम उसे भगवान् मानते हैं, उतना ही लाभ होता है। उसमें श्रद्धा करते हैं, यद्यपि भगवान्‌की मूर्ति तो पाषाणकी है। इसी प्रकार यह विश्व है, इसे परमात्मा माने। माननेकी चीज है, एक मिनटमें चौंध खुल जाय। आपको परमात्माका स्वरूप

नहीं भी दीखे तो मान लेना चाहिये। माननेके बाद चौंध खुल जायगी, मान्यतासे ही बेड़ा पार है। हरे रंगका चश्मा चढ़ानेसे सब संसार हरा-हरा दीखने लग जाता है, इसी प्रकार भगवान्के रंगका चश्मा लगा ले तो सब संसार भगवान्के रंगका ही दीखने लग जाता है। परमात्मा छोड़कर उसे कोई भी दूसरी चीज दीखती है तो वह गलती है, दिग्भ्रम हो गया है। बार-बार निश्चय करना चाहिये। परमात्मा है, परमात्मा है, वेदकी तरह रटे, जो कुछ है परमात्मा है, जो कुछ है परमात्मा है, यह तो सच्चा अभ्यास है। जो कुछ है वासुदेव है, जो कुछ है वासुदेव है। आज जो नाना प्रकारका संसार दीखता है, यह स्वरूप रहते हुए भी आपको सब भगवान्का स्वरूप दीखने लगेगा। जैसे बलदेवजीको सब साक्षात् कृष्ण दीखते थे। अभ्यास यही करना है कि जो कुछ है परमात्माका स्वरूप है।

सब रोगोंकी औषध भगवन्नाम-जप

गायोंके बारेमें हरदेवसहायजीने बड़ा अच्छा व्याख्यान दिया, हमें उसे काममें लानेकी चेष्टा करनी चाहिये। आपने बताया साबुनमें चर्बी लगती है। हमलोगोंको चर्बीवाला साबुन काममें नहीं लाना चाहिये। गायोंकी सेवाकी बात आपने बहुत अच्छी बतायी, हमलोग इसमें पिछड़े हुए हैं। गायोंकी सेवा हमसे बनती नहीं, हम अपनी बात बताते हैं। दूध पीनेमें तो हम कमी नहीं करते, किन्तु गौकी सेवा नहीं करते। ध्येय रखते हैं कि सेवा करें फिर भी शतांश भी नहीं बनती। अपना कर्तव्य समझकर यथासाध्य चेष्टा करनी चाहिये। गायोंकी वृद्धिके लिये आवश्यकता है, दूधकी आवश्यकता बढ़ावें, यदि दूधकी आवश्यकता बढ़ेगी तो गौ पालन भी होगा। आपने बताया हमलोग अर्थके दास हो गये हैं, बात यह ठीक है। आज लोग धन देखते हैं, गाय चाहे कसाईके हाथ जाय। यह बात हमारे धर्मके लिये बड़ी घातक है। हमलोग इसीपर तुले हुए हैं कि किसी तरह रुपये पैदा हों। इन्होंने जो बातें कहीं, आपलोगोंको उसके लिये चेष्टा करनी चाहिये।

अब स्वतन्त्र अपनी बात आपको बतायी जाती है। आज समय कम रह गया है, इसलिये बहुत मूल्यवान् बात सुनायी जाती है। खूब ध्यान देकर सुननी चाहिये। आपके समझमें आ जायगी तो उससे बहुत अधिक लाभ उठा सकेंगे।

समय बहुत ही मूल्यवान् है, इसका सुधार करना चाहिये। मनुष्यको एक मिनट भी निकम्मा नहीं रहना चाहिये। मन

प्रवचन-तिथि—ज्येष्ठ कृष्ण ७, सोमवार, संवत् २००१, दिनांक १८-५-१९४४, दोपहर, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

इन्द्रियोंसे हर समय काम लेना चाहिये। आपको जो शरीर मिला है इसका भाड़ा लग चुका। जिस प्रकार किरायेकी मोटरगाड़ी हो, भाड़ा तो उसका लग चुका, फिर चाहे काममें लाओ, चाहे मत लाओ। आप अपने समयको भोग-आराममें बिता रहे हैं, यह आप अपने गलेपर छूरी चला रहे हैं। आप स्वयं अपनी हिंसा कर रहे हैं, हमें अपनी आत्माका उद्धार करना चाहिये, किन्तु अपनी आत्माको गिराना नहीं चाहिये। भगवान्‌का यह सूत्र है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

(गीता ६।५)

अपने द्वारा अपना संसार-समुद्रसे उद्धार करे और अपनेको अधोगतिमें न डाले, क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।

भगवान्‌ने यह क्यों कहा? इसलिये कहा कि प्रायः मनुष्य अपने-आप अपनी आत्माका पतन कर रहे हैं। अपना समय हम प्रमादमें बितायें तो हम अपना पतन कर रहे हैं। प्रमाद साक्षात् मृत्यु है, प्रमाद पाप है, उसका फल दुःख है, उससे आत्माका पतन होता है। प्रमाद क्या है?

१. कर्तव्यकर्मका त्याग प्रमाद है।

२. अकर्तव्य कर्मका करना भी प्रमाद है।

उदाहरणके लिये हमें स्वाध्याय करना चाहिये। नहीं करते हैं वह प्रमाद है। व्यर्थ क्रिया नहीं करनी चाहिये। जिस प्रकार ताश, चौपड़ खेलना, बीड़ी-सिगरेट पीना— यह करते हैं तो प्रमाद करते हैं।

कर्तव्य कर्म करें, व्यर्थ क्रिया न करें, ताश, चौपड़ खेलना हाथोंका प्रमाद है, व्यर्थ बकवाद करना वाणीका प्रमाद है, फालतू

संकल्प करना मनका प्रमाद है। हाथका प्रमाद तथा वाणीका प्रमाद रोका जा सकता है, किन्तु मनका प्रमाद रोकना बड़ा कठिन है। कठिन होते हुए भी इसका उपाय शास्त्रोंमें बताया है। कठिन तुमने ही बनाया। तुमने इसकी आदत खराब डाल दी। मन बालकके समान है, उसे उद्दण्ड किसने बनाया? तुमने ही। लोग बालककी शिकायत लेकर आते हैं। माता-पिता कहते हैं कि क्या तुम्हारे लड़के उद्दण्डता नहीं करते। यह सुनकर बालकका साहस बढ़ जाता है, ऐसा कहकर तुम अपने लड़केकी सहायता नहीं करते, अपितु उस लड़केके लिये घातक हो रहे हो। इसी प्रकार मनको तुम्हारी छूट मिली। यह इतना उद्दण्ड हो गया कि तुम्हारी बात सुनता ही नहीं। प्रमादका त्याग करना चाहिये और मनका भी सुधार करना चाहिये। सुधार हो सकता है। भगवान् कहते हैं—

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

(गीता ६। ३५)

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मन अभ्यास और वैराग्यसे वशमें होता है।

पुनः पुनः परमात्माका मनन करना अभ्यास है और रागको, आसक्तिको हटानेका नाम वैराग्य है।

हर समय शरीर, मन, वाणीसे काम लेना चाहिये, चौकसी रखनी चाहिये। हमारा मन, वाणी, शरीर व्यर्थ तो नहीं जा रहे हैं, सावधान होकर काम लेना चाहिये। आप पूछें पैरोंसे क्या काम लिया जाय? पैरोंका काम चलना है। हाथोंसे बुरा काम भी किया जा सकता है, अच्छा काम भी, वाणीसे क्या काम लेना चाहिये। भगवान् कहते हैं—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

(गीता १७। १५)

जो उद्वेग न करनेवाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण तथा जो वेद-शास्त्रोंके पठनका एवं परमेश्वरके नाम-जपका अभ्यास है—वही वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है।

इससे जो विपरीत है उससे बचाकर रखना चाहिये, याद रखना चाहिये झूठ बोलनेसे मौन रहना उत्तम है, किन्तु मौनकी अपेक्षा भी सत्य बोलना, प्रिय बोलना उत्तम है। इसी प्रकार सब विषयमें समझ लेना चाहिये। हम हाथोंसे किसीका अनिष्ट करें, उसकी अपेक्षा कुछ न करना उत्तम है, किन्तु उसकी अपेक्षा किसीको सुख पहुँचाना और उत्तम है। समय बहुत मूल्यवान् है, इसमें उत्तम-से-उत्तम काम करना चाहिये। मनसे क्या काम लेवे?

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥

(गीता १७। १६)

मनकी प्रसन्नता, शान्तभाव, भगवच्चिन्तन करनेका स्वभाव, मनका निग्रह और अन्तःकरणके भावोंकी भलीभाँति पवित्रता—इस प्रकार यह मनसम्बन्धी तप कहा जाता है।

यह मानसिक तप बतलाया। मनको हर समय प्रसन्न रखना चाहिये। यदि कहो हमारा मन संसारके विषय-भोगोंमें रमण करता है तो बड़ी प्रसन्नता होती है। वास्तवमें यहाँ सात्त्विक सुख, प्रसन्नताका प्रकरण है। दूसरी बात यह है कि मनकी प्रसन्नताका जो आप यह अर्थ लेते हैं कि सांसारिक भोगोंमें मन प्रसन्न होता है, ठीक है, परन्तु याद रखो उसका परिणाम बड़ा

खराब है। वह क्षणिक सुख बड़े भारी दु:खको देनेवाला है। समुद्र थोड़ी देरके लिये शान्त-सा प्रतीत होता है, किन्तु समझना चाहिये बड़ी भारी आफत आनेवाली है। इसी प्रकार प्रारम्भमें जो अमृतके समान सुख प्रतीत होता है उसका परिणाम विषके समान है। भगवान् कहते हैं—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दु:खयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्त: कौन्तेय न तेषु रमते बुध:॥

(गीता ५। २२)

जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी दु:खके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिये हे अर्जुन! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।

मूर्ख सांसारिक भोगोंमें रमते हैं, पण्डित नहीं रमते। महर्षि पतंजलिके समान योगका ज्ञाता, विद्वान् विश्वमें नहीं है। उन्होंने आत्माके कल्याणके लिये छोटा-सा शास्त्र बनाया, उसमें उपदेशका भण्डार भरा हुआ है। वे कहते हैं— **परिणामतापसंस्कार गुणवृत्तिविरोधाच्च दु:खमेवं सर्वं विवेकिन:।**

जिसको आप सुख मानते हैं विवेकीकी दृष्टिसे वह दु:ख ही है। रुपये भी दु:खके मूल हैं। उपार्जनमें दु:ख, रक्षा करनेमें दु:ख, वियोगमें दु:ख, सांसारिक पदार्थोंमें सुख नहीं है। सुख तो केवल परमात्मामें है। मनकी प्रसन्नताकी बात चल रही थी। आध्यात्मिक विषयको लेकर जो प्रसन्नता है, वह प्रसन्नता सौम्य भाव है। मनका देवता चन्द्रमा है, इसलिये उसके अनुरूप ही मनको बनाना चाहिये। मौन-परमात्माके ध्यानका नाम ही यहाँ मौन है और मनका निग्रह करना चाहिये। अन्त:करणके भावोंकी शुद्धता— मनके भावोंको

शुद्ध बनाना चाहिये। इसी प्रकार शरीरके बारेमें बताया—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥

(गीता १७। १४)

देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनोंका पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—यह शरीरसम्बन्धी तप कहा जाता है।

यह शारीरिक तप है। देवता, गुरु, ब्राह्मण और ज्ञानीजनोंका पूजन और पवित्रतासे रहना चाहिये, आहारकी शुद्धि होनी चाहिये। आप कहते हैं हमारा मन परमात्मामें नहीं लगता, आपका आहार पवित्र नहीं है, इसलिये आपका अन्तःकरण पवित्र नहीं होता। न्यायसे उपार्जन किया हुआ द्रव्य पवित्र है, उससे बनाया हुआ पवित्र आहार होना चाहिये। भीष्मजी महाराज शरशय्यापर उपदेश दे रहे थे कि जिस सभामें अन्याय होता हो या तो उसका विरोध करना चाहिये या वहाँसे हट जाना चाहिये। यह बात सुनकर द्रौपदीको हँसी आ गयी कि व्याख्यान तो देते हैं, काममें नहीं लाते। भीष्मने कहा—बेटी सत्य बात है। दुर्योधनका अन्न खानेसे मेरी बुद्धि खराब हो गयी थी। आज आप देख रहे हैं कि किसी प्रकार किसी अधिकारीके पास रिश्वत पहुँचा दो तो न्याय विदा हो जाता है। कारण यह है कि अन्यायका पैसा खानेसे, अशुद्ध आहार खानेसे बुद्धिमें चंचलता हो जाती है। वह स्थिर कैसे हो और आहारशुद्धि क्या है? बहुत-से भाई लोग तो होटलोंमें खाते हैं, बाजारकी मिठाई, बाजारका चाय-पान यह तो मामूली बात है। बाजारकी मिठाइयोंमें अधिकांश वेजीटेवल घी रहता है, पानीका तो

ठिकाना नहीं कौन भरता है? पेट दुखा तो कहा सोडावाटर ले आओ। यह सब अपवित्र भोजन करनेसे आपकी बुद्धि चंचल हो जाती है। एक तो अन्यायपूर्वक कमाये हुए द्रव्यकी अपवित्रता, एक अशुद्धिकी अपवित्रता।

आपको जैसे प्रमादकी बात बतलायी, जिस प्रकार यह घातक हो जाती है, उससे भी ज्यादा घातक पाप है। पापका मतलब है झूठ बोलना, चोरी करना, मदिरा पीना आदि। इनका परिणाम बड़ा बुरा है। हम जो पाप करते हैं, यह अपनी आत्माका पतन करते हैं, अपने दुःखके स्वयं कारण बनते हैं। भोगी आदमी भोग भोगता है, परिणाम बहुत बुरा होता है। मछली आटेकी गोलीको गटक जाती है। उसको गोलीका स्वाद आता है, पीछे तड़प-तड़पकर मरती है। पतिंगोंको दीपक आनन्दकी मूर्ति दीख रहा है। वे समझते नहीं हैं कि यह साक्षात् मृत्यु है। इसी प्रकार हमारे लिये संसारके भोग कालके रूप हैं, दीख रहे हैं आनन्दरूपमें, पाप, भोग, प्रमादको मृत्यु समझकर दूरसे ही त्याग कर देना चाहिये। जिस प्रकार हम साँप, बिच्छू, सिंहके पास नहीं जाते। साँप, बिच्छू इतनी बुरी चीज नहीं है जितने बुरे पाप, भोग और प्रमाद हैं। आज हमें ईश्वरप्राप्तिमें विलम्ब क्यों हो रहा है? कारण है आलस्य। आलस्य साधनमें रोड़ा है और अधोगतिमें ले जानेवाला है—'**अधोगच्छन्ति तामसाः**'।

बुद्धिको शुद्ध और तीक्ष्ण बनाओ, उसके अनुसार चलो, तुम विवेकके द्वारा निर्णय करो और उसके अनुसार प्रयत्न करो। किन्तु तुम बुद्धिका तिरस्कार करके मनके अनुसार चलोगे तो तुम्हारी दुर्दशा होगी। यदि आप पूछें कि ऐसी कोई बात बता दें जिससे सात-पाँचकी आवश्यकता नहीं रहे। एक समय

बादशाहने बीरबलसे कहा— *ऐसा कोई लाओ नर। पीर बावरची भिस्ती खर॥* उपदेशका काम भी कर ले, पानी भी ले आये, रसोई भी बना ले, काम पड़े तो बोझा भी ढो ले। बीरबलने एक ब्राह्मणको लाकर खड़ा कर दिया। इसी प्रकार आप कहें ऐसा कोई उपाय हमें बता दें कि एकसे ही सब ठीक हो जाय। ऐसा एक ही पदार्थ है, उसका नाम है भगवान्। सारे कामोंकी सिद्धि उससे हो सकती है, सारा काम भगवान्‌के भजनसे हो सकता है। इसका इतना भारी प्रभाव है कि सारे दोष आप ही विनष्ट हो जाते हैं और सारे गुण आ जाते हैं। दुकानदारके यहाँ जाते हैं, कहते हैं सबसे बढ़िया कपड़ा दो। वह कहता है सबसे बढ़िया भगवान्‌का नाम है। भगवान्‌के नामसे बढ़कर कोई वस्तु है ही नहीं। यह समझकर हमें हर समय भगवान्‌के नामका जप करना चाहिये। जिससे हमें परम सुखकी प्राप्ति हो जायगी। आपको पहले यह बात कही थी कि वह बात तो बता देंगे, किन्तु नीचा काम उससे नहीं लेना चाहिये। नीचा काम क्या है?

भगवान्‌के नामका दुरुपयोग नहीं करना चाहिये। भगवान्‌के नामका जितना प्रभाव है इतना किसीका भी नहीं है, इसलिये भगवान्‌के नामका जप तो करना ही चाहिये, परन्तु बेचना नहीं चाहिये। उसका मूल्य भगवान् हैं। मैं जा रहा हूँ, जयदयाल कहकर पुकारनेसे मैं खड़ा हो जाता हूँ। भगवान् भगवान्‌के नामसे आ जाते हैं, इसलिये भगवान्‌के नामकी रटन लगानी चाहिये। उस भगवान्‌के नामका मूल्य है भगवान्। निष्कामभावसे भगवान्‌का भजन करना चाहिये, स्त्री, पुत्र, धन आदिके लिये नहीं। भगवान्‌का भजन भगवान्‌के लिये ही करना चाहिये। निष्काम प्रेमभावसे प्रह्लादकी तरह भजन करना चाहिये। भगवान् प्रह्लादसे

कहते हैं बेटा विलम्ब हो गया, मैं क्षमा चाहता हूँ। तुम माँगो क्या माँगते हो? प्रह्लादने कहा—मैं बनिया नहीं हूँ कि रुपया देकर बदलेमें दूसरी चीज लेऊँ। भगवान्‌ने कहा—प्रह्लाद! मेरे सन्तोषके लिये तुमको कुछ माँगना ही होगा। प्रह्लादने कहा—मैं यही माँगता हूँ कि यदि मेरे माँगनेकी इच्छा हो तो उसका विनाश कर दें। मैं तो चाहता हूँ कि मेरा प्रेम हेतुरहित होना चाहिये। निष्काम प्रेमके बदले भगवान् अपने-आपको दे डालते हैं, फिर भी कहते हैं कि मैं ऋणी हूँ। हनुमान्‌जीने क्या किया था—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥

पवनसुत हनुमान्‌जीने भगवान्‌के नामका जप कर अपने वशमें कर लिया। जिस भगवान्‌के नामकी इतनी महिमा है, उसको हम इस तरह बेचें। बँगलामें भगवान् कहते हैं—

जे करे आमार आस तार करि सर्वनाश।
तेऊ न छाड़े मोर आस तार आमी दासेर दास॥

नारायण नारायण नारायण

भगवान्‌के लिये प्रेम और बेचैनी लायें

शरीरका कोई भरोसा नहीं है। भाई रामेश्वरका लड़का चलता रहा। यह परमात्माकी दया है। इस प्रकार होनेसे मनुष्यको कितना दुःख और शोक हो सकता है। स्वाभाविक ही मनुष्यको इससे वैराग्य होना चाहिये। समझना चाहिये इसमें भगवान्‌की दया ही है। हमारे समझमें दया नहीं आ रही है। वास्तवमें विचार कर देखें, जिस कामके लिये हमलोग यहाँ आये हैं, उसे बना लेना चाहिये। ज्ञानकी दृष्टिसे देखे तो किसीसे कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु हमलोग मोहित होकर उन्मत्त हो रहे हैं। भगवान् हमें सचेत करते हैं। भगवान् हमें दुःख क्यों देते हैं? अपनी स्मृतिके लिये, भगवान् हमें वैराग्यके लिये चेताते हैं, किन्तु हमलोगोंके न वैराग्य होता है न जागृति ही। हम भगवान्‌से कातर भावसे प्रार्थना करें—प्रभो! हमारी ओरसे तो हमें निराशा ही होती है, किन्तु आपके विरदकी ओर देखकर साहस होता है। भगवान्‌से गद्गद भावसे एकान्तमें प्रार्थना करें, जैसे अर्जुन भगवान्‌से कह रहे हैं—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

(गीता २। ७)

इसलिये कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाववाला तथा धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये; क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये।

प्रवचन-तिथि—ज्येष्ठ कृष्ण ८, संवत् २००१, मंगलवार, दिनांक १३-५-१९४४, दोपहर, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

हे नाथ! कायरतासे जिसका स्वभाव नष्ट हो गया है ऐसा मैं हूँ। हमें यही अपने ऊपर घटाना चाहिये। साधनके लिये जो वीरता नहीं है, यही कायरता है। प्रभो हम असमर्थ हैं। हम किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये हैं, हमें रास्ता नहीं सूझता, बुद्धि काम नहीं देती, इसलिये हम आपकी शरण हैं, आप हमें शिक्षा दीजिये। जब-जब हमारी बुद्धि कुण्ठित हो, हमें धर्मका ज्ञान न रहे, कमजोरियाँ आकर घेर लें, तब-तब इस श्लोकका कई बार पाठ करना चाहिये। यह श्लोक बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसी श्लोकपर सारी गीता कही गयी है। यह श्लोक भगवान्‌के हृदयमें गीताका उत्पादक है। इसलिये हमें सात-पाँच छोड़कर यह श्लोक धारण कर लेना चाहिये। बल्कि इससे भी बढ़कर यह श्लोक है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

सारे धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्मोंके आश्रयको त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्माकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो, मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

यह आश्वासन भगवान्‌का केवल अर्जुनके लिये ही नहीं है। जो उनके शरण होते हैं, उन सबके लिये है। संसारमें भगवान्‌की शरणसे बढ़कर कोई उपाय नहीं है।

वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम्॥

(विष्णुसहस्रनाम १३०)

वासुदेवपर ही जो निर्भर है, ऐसा पुरुष सनातन पुरुष परमेश्वरको ही प्राप्त हो जाता है।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७। १४)

क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परन्तु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं वे इस मायाको उल्लङ्घन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं।

कितना सरल उपाय है। अन्य उपायोंमें कठिनाई है, किन्तु शरण होनेमें कठिनाई नहीं है। कितना ही दोषी मनुष्य हो, शरण चला जाता है तो उसका हृदय पिघल जाता है। पानी-पानी हो जाता है। भरतजी कहते हैं—हे नाथ! मेरे आचरणोंकी ओर देखें तो सौ करोड़ जन्मोंमें भी उद्धार होनेका नहीं है, किन्तु आप दीनबन्धु हैं। इसी प्रकार हमें एकान्तमें रोकर प्रार्थना करनी चाहिये। हे नाथ! आप दयाके सागर हैं, दीनोंके बन्धु हैं, आपके विरदको देखकर विश्वास होता है कि मेरा भी कोई उपाय होगा। बड़ा सरल उपाय है केवल भगवान्‌की शरण होना चाहिये। भगवान् कहते हैं कैसा ही पापी हो, जो एक बार कह देता है कि मैं आपका हूँ, मैं उसे अभय कर देता हूँ, यह मेरा प्रण है। भगवान्‌का हमारे ऊपर हाथ है। यह समझकर निर्भय होना चाहिये। भगवान्‌से यही माँगे—प्रभो! आपमें मेरा विशुद्ध प्रेम हो, प्रेमकी कमी नहीं रहनी चाहिये। पूर्ण प्रेम ही सबसे बढ़कर है। अनन्य प्रेमके समान संसारमें कोई वस्तु नहीं है। प्रेमके योग्य एक भगवान् ही हैं। इसलिये हमें सब संसारसे प्रेम बटोरकर केवल एक प्रभुके चरणोंमें प्रेम करना चाहिये। हमलोगोंको प्रभुका प्रिय बनना चाहिये। किस प्रकार बनें? भगवान्‌का नाम जपनेसे और सत्संगसे। भगवान्‌में प्रेम होनेके लिये सत्संग करना चाहिये।

संत-महात्मा लोगोंका संग नहीं मिले तो साधकोंका ही संग करे। साधकोंको देखकर हरा-भरा हो जाय। साधक भी नहीं मिलें तो संत-महात्माओंके जो लेख हैं उनका स्वाध्याय करे। दूसरा उपाय है भगवान्‌के नामका जप, यदि ध्यानसहित जप हो तब तो सोना और सुगन्ध है। ध्यान नहीं हो तो ध्यान बिना ही नामका जप करो।

सुमिरअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

रूपको बिना देखे भी नामका स्मरण करना चाहिये तो विशेष प्रेम होता है। प्रेमसे कुछ भी भगवान्‌के अर्पण करो तो वे खानेके लिये तैयार हैं।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।

प्रेमके कारण भगवान् द्रौपदीके सागका पत्ता, विदुरके यहाँ केलेके छिलके खाये, गजेन्द्रसे पुष्प स्वीकार किया एवं भीलनीके बेर खाये। रन्तिदेवके यहाँ केवल जलसे ही प्रकट हो गये। वे केवल प्रेम देखते हैं। प्रेम तो हममें है ही, संसारसे न करके प्रभुसे प्रेम करना चाहिये। आप ध्यान देकर देखें, भगवान् जितना प्रेमका आदर करते हैं, उस प्रकार करनेवाला और कोई है ही नहीं। भगवान् प्रेमीको देखकर अपने-आपको भुला देते हैं। वे कहते हैं मैं प्रेमियोंके अधीन हूँ। वे जहाँ-जहाँ जाते हैं, मैं उनके पीछे-पीछे जाता हूँ। ऐसे प्रभुको छोड़कर हम अन्य किसीके

साथ प्रेम करें तो हमारी नीचताकी हद है। इसलिये संसारके लोगोंको तिलांजलि देकर केवल प्रभुसे प्रेम करना चाहिये। आप कथाएँ सुनते हैं, फिर भी आपलोग सचेत नहीं होते। यक्षसे युधिष्ठिरने यही कहा था कि लोग नित्यप्रति मरते हैं, फिर भी लोग सचेत नहीं होते, यही आश्चर्य है। हमारा जीवन क्षणिक है, अभी बात कर रहे हैं, एक मिनटका पता नहीं कि कब हृदय काम करना बंद कर दे, यही दशा तो हमलोगोंकी होनेवाली है। आपके सारे काम धरे रहेंगे, आप निश्चिन्त कैसे हो रहे हैं? प्रभुके भरोसे निश्चिन्त हों तब तो ठीक है, अन्यथा महान् हानि है। आप ध्यान दें, भगवान् अपने-आपको भुलाकर किस प्रकार प्रेम करते हैं? सुदामाके साथ बालक अवस्थामें प्रेम था। सुदामाजी बूढ़े हो गये, फिर भी उन्होंने प्रेम नहीं छोड़ा, भगवान्‌का कितना प्रेम था। सुदामाको अपने-आपको अर्पण कर दिया, ऐसे दरिद्रके साथ कोई प्रेम कर सकता है, ऐसे प्रेम करनेवाले प्रभुको हम बिसार दे रहे हैं। स्त्री, पुत्र, रुपयोंसे प्रेम कर रहे हैं, इससे बढ़कर मूर्खता क्या होगी। प्रेमके तत्त्वको प्रभु ही जानते हैं। प्रभुसे हम प्रेम करेंगे तो प्रभु हमसे करेंगे। हमारी शक्ति तो उनके पास पहुँचनेकी नहीं हैं, किन्तु उनकी तो है। उनकी प्रतिज्ञा है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

(गीता ४। ११)

हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ; क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं।

जो भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा करता है, भगवान् उससे मिलनेकी इच्छा करते हैं। हमारी इच्छा तो कमजोर है और

प्रभुकी इच्छा बलवती है। हमारी इच्छा बलवती नहीं है, इसलिये विलम्ब होता है। प्रभुसे मिलनेकी तीव्र इच्छा होनी चाहिये। तीव्र इच्छा होनेसे तुम्हारी लगन भी तीव्र होगी। लगन उसका नाम है तन-मनकी सुधि ही नहीं रहे, जैसे सुतीक्ष्णजी। भगवान् तुरन्त उनके पास आ गये। उनको दिशाका भी ज्ञान नहीं रहा, रास्तेमें ही बैठ गये, भगवान् आये, सचेत किया और मिले। सुतीक्ष्णकी तरह हमारा भाव होना चाहिये। हमारेमें तीव्र इच्छा नहीं है। इसका कारण मूर्खता है, और क्या हेतु हो सकता है? हमलोग संशयात्मा हैं, इसी कारण हमारी यह दुर्दशा हो रही है अन्य किसी बातकी आवश्यकता नहीं, भगवान्से मिलनेकी आपकी उत्कट इच्छा होनी चाहिये। भगवान्के बिना आपको चैन नहीं पड़ना चाहिये। दिनमें चैन नहीं, रातमें रैन नहीं। जैसे जलके वियोगमें मछलीकी पानीसे मिलनेके लिये दशा होती है, ऐसी इच्छा होनी चाहिये। आपके हृदयमें तीव्र इच्छा होगी तो आपको स्त्री, धन, पुत्र कोई और अच्छे नहीं लगेंगे। तुलसीदासजीने कहा है—

तुलसी हरिकी लगनमें ये पाँचों न सुहात।
विषयभोग निद्रा हँसी जगत्प्रीति बहुबात॥

हरिकी प्रीतिमें संसारके विषयभोग अच्छे नहीं लगते। जैसे बुखारके जोरसे रोटी अच्छी नहीं लगती। सीताजी भगवान्से कहती हैं—आप मुझे छोड़कर चले जायँगे तो मेरी क्या दशा होगी? भोग रोगके समान है, गहना भाररूप है, संसार यमकी यातना है। किसके वियोगमें? पतिके वियोगमें। हमारा पति परमात्मा है। उसके वियोगमें हमारी यही दशा होनी चाहिये। हमें रात्रिको नींद नहीं आनी चाहिये, जैसे धृतराष्ट्रको रात्रिमें नींद नहीं आती थी। जो दूसरेका धन हड़पता है उसे नींद नहीं आती। जो भारी

चिंतामें मग्न रहता है, उसे भी रात्रिको नींद नहीं आती। हमें चिन्ता कहाँ है? जब हमें चिन्ता होगी, जब तीव्र लगन लगेगी, तब रात्रिकी नींद उड़ जायगी। अभी तो हम सुखसे सोते हैं, भगवान्‌की कोई परवाह नहीं। भगवान् आयें तो अच्छी बात, नहीं आयें तो अच्छी बात। जिसके भगवान्‌की लगन होती है, उसे हँसी-मजाक अच्छे नहीं लगते। जिसका प्रेम प्रभुसे है, वह क्या संसारके भोगोंमें रम सकता है? व्यर्थकी बातें अच्छी नहीं लगतीं, भगवान्‌से मिलनेमें प्रयत्नकी आवश्यकता नहीं है। आपसे निरन्तर भजन नहीं होता है, कोई बात नहीं, किन्तु मिलनेकी उत्कट इच्छा होनी चाहिये। आपने पूछा—एक भगवान्‌के सिवाय और कोई इच्छा न हो, ऐसी कृपा किस तरह हो? प्रभु और महात्माकी कृपासे। आप कहें कि प्रभुकी कृपा तो है ही। ठीक है, किन्तु हम मानते नहीं। हमारे मिलनेकी तीव्र इच्छा होगी तो भगवान्‌के भी हमसे मिलनेकी तीव्र इच्छा होगी और वे क्षणमें आ जायँगे। आ क्या जायँगे, वे तो सर्वत्र हैं ही, प्रकट हो जायँगे।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

हरि सब जगह व्यापक हैं, प्रेमसे प्रकट होते हैं। शिवजी कहते हैं मैं जानता हूँ। ऐसी बातें सुनकर भी भगवान्‌में प्रेम न हो तो फिर कब होगा। आप कहते हैं हम भगवान्‌से प्रेम चाहते हैं, किन्तु आप कहते ही हैं, चाहते नहीं। भगवान् कहते हैं मेरेसे प्रेम चाहते हो तो दूसरोंसे प्रेम मत करो। मुझे अव्यभिचारी भक्ति अच्छी लगती है। तुम्हारे मनमें संसारसे प्रेम है, यह तो कलंकको लिये हुए है, व्यभिचार दोष है। किन्तु भगवान् अनन्य प्रेमसे आते हैं। भगवान्‌से मिलना हो तो विशुद्ध प्रेम करना चाहिये। वे कैसे महान् पुरुष हैं। इतना महान् होते हुए भी जो उनको अपने हृदयमें बसा लेता है, भगवान् उसे अपने हृदयमें बसा लेते हैं।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥

(गीता ७। १७)

उनमें नित्य मुझमें एकीभावसे स्थित अनन्य प्रेमभक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है, क्योंकि मुझको तत्त्वसे जाननेवाले ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(गीता ९। २९)

मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है; परन्तु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।

सबसे मेरी यही प्रार्थना है कि हमारे हृदयमें जो संसारका वास है, उसे हटाकर प्रभुको हृदयमें बैठाना चाहिये। इसके बाद प्रभु हमें अपने हृदयमें बैठा लेंगे। जैसे राधिकाजीकी कथा आती है, भगवान् प्रशंसा करते हैं कि मुझे राधिकाजी सदासे प्रिय हैं। राधिकाजी रुक्मिणीजीके यहाँ एक बार गयीं। सब रानियाँ सेवा करने लग गयीं। दूध पिलाया गया, वह थोड़ा गर्म पिलाया गया। रात्रिमें जब भगवान् आये, रुक्मिणीजीसे मिले। रुक्मिणीजीने कहा—प्रभो! हमारा प्रेम राधिकाजीसे कम है क्या? रात्रिके समय रुक्मिणीजी जब पगचम्पी करने लगीं तो देखा उनके पैरोंमें फफोले हो गये हैं। रुक्मिणीजीने पूछा तो भगवान्ने कहा कि राधिकाजी यहाँ आयी थीं, उन्हें दूध पिलाया गया, वह दूध गर्म था। उन्हें गर्म दूध पिलानेसे मेरे फफोले हो गये। रुक्मिणीजीने कहा दूध पिलाया राधिकाजीको, फफोले हुए आपको। भगवान्ने कहा कि राधिकाजी मेरे चरणोंका ध्यान करती रहती हैं, अतः

वह दूध मेरे चरणोंपर ही पड़ा, इससे फफोले हो गये। भगवान् कहते हैं जो हर समय मेरा ध्यान करता है मैं उसके हृदयमें वास करता हूँ और वह मेरे हृदयमें वास करता है। जिस किसी प्रकार हमारा प्रभुमें विशुद्ध प्रेम हो, उसके लिये चेष्टा करनी चाहिये। भगवान् कहते हैं— **सुहृदं सर्वभूतानां।** भगवान् सबके परम सुहृद् हैं। जो कोई उन्हें अपना मित्र समझे, सुहृद् समझे, उसीके वे सुहृद् हैं। ऐसे प्रभुको बिसारकर संसारके भोगोंमें जो समय बिताता है, वह मूर्ख नहीं तो क्या है।

नारायण नारायण नारायण

संसारको झंझट समझकर भगवान्‌का भजन करें

समय तो खूब जोरसे जा रहा है। इस तरह जाते-जाते ही मृत्यु आ जायगी।

तू कुछ और विचारत है नर तेरो विचार धर्‍यो ही रहेगो।

अतः हमें शीघ्रतासे काम बना लेना चाहिये। बहुत भारी जोखिम है। हमलोग व्यर्थ समय बिताते हैं। यह नहीं सोचते कि मनुष्यका जीवन कितना मूल्यवान् है। भगवान् कहते हैं—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

(गीता ६। ५)

अपने द्वारा अपना संसार-समुद्रसे उद्धार करे और अपनेको अधोगतिमें न डाले, क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।

भगवान्‌का अपने मस्तकपर हाथ समझकर हर समय मस्त रहना चाहिये। संसारसे अपना कोई सम्बन्ध है ही नहीं, क्षणिक है। संसारसे हर समय विरक्त रहे। संसारका अडंग-बडंग छोड़कर भगवान्‌का भजन करे। संसारमें फँसाव है, इसमें फँसे ही नहीं। जो चले गये वे चले गये, जो बाकी हैं उनको भी जाना पड़ेगा। सबसे सम्बन्ध टूटना है। जीते हुए ही बहुतोंसे टूट जायगा, बाकी आपके जाते ही सबका सम्बन्ध समाप्त है। सबसे हिसाब बराबर रखे। खाता बराबर रहे तो बड़ा आनन्द है। पाप नष्ट हो जाता है, परन्तु ऋण नष्ट नहीं होता। हाँ, भगवान् मिल

प्रवचन-तिथि—ज्येष्ठ कृष्ण ८, संवत् २००१, दिनांक १३-५-१९४४,, सायंकाल, टीबड़ी, स्वर्गाश्रम।

जायँ तो उसके ऋणका उत्तरदायित्व भगवान्के ऊपर हो जाता है। जप करनेसे जैसे पाप नाश होता है, उस तरह ऋण नाश नहीं होता। ऋण लेना ठीक नहीं है। दान लेकर भी ऋण चुकाना चाहिये।

जिस प्रकार सूर्य उदय होता है तो अन्धकार मिट जाता है। उसी प्रकार जैसे-जैसे भगवान्के निकट जाता है, वैसे-वैसे हृदयका अन्धकार मिटता जाता है।

मनको हर समय प्रसन्न रखे, यह भगवान्की प्राप्तिका एक साधन है। आनन्द! आनन्द! इससे भगवान् मिलें—ऐसा साधन मिलेगा। भगवान्की दया, स्वरूप, गुण, प्रभाव याद करके प्रसन्न होता रहे। देखो भगवान्की कैसी कृपा है। हर समयकी प्रसन्नता बहुत शीघ्र भगवान्को मिला देती है। अध्यात्म विषयकी प्रसन्नताकी यह बात है। विषयोंकी प्रसन्नतामें तो दुःख-ही-दुःख भरा है।

प्रश्न—प्रसन्नता मूल्यवान् है या रोना।

उत्तर—स्वभाव और पात्रके अनुसार दोनों ठीक हैं। इस समय भगवान्की दयाको लेकर प्रसन्नताकी बात हो रही है, इसलिये उसका ही गुण गाया जा रहा है। जब विरह व्याकुलताका प्रसंग होगा, तब रोनेकी ही प्रशंसाकी बात कही जायगी। प्रशंसा झूठी नहीं है, वास्तवमें है। या कभी रोवे, कभी हँसे। दोनों ही लाभकी चीज है। वास्तवमें तत्त्व समझना चाहिये।

गोपियाँ रो रही हैं, वे भगवान्के तत्त्वको समझकर रो रही हैं। उनका वह रोना मूल्यवान् है। प्रह्लाद भगवान्के तत्त्वको समझकर हँस रहा है, वह हँसना भी मूल्यवान् है। भगवान्की लीला, तत्त्व, रहस्यको समझकर हँसना भी बहुत मूल्यवान् है। बात समझनी चाहिये। क्रिया प्रधान नहीं है, भाव ही प्रधान है।

भगवान् केवल भाव ही देखते हैं। हृदयसे रोनेसे भगवान्पर बड़ा प्रभाव होता है। क्रिया तो रोनेकी एक ही है, किन्तु भावकी प्रधानता है। हमलोग भी भाव ही देखते हैं। जितने आदमी हैं किसीकी वास्तविक श्रद्धा है, वह भी ध्यानमें है, दिखाऊ है वह भी ध्यानमें है। हम तो ठगे भी जा सकते हैं, किन्तु भगवान्के यहाँ पोल नहीं चल सकती। भगवान्को ठग ले तो वे भगवान् ही नहीं। यह बात जिसके समझमें आ जाय, वह फिर दम्भ नहीं कर सकता। यह समझमें आ जाय कि जितना ही हम दिखाऊपन करेंगे, भगवान् उतने ही दूर भाग जायँगे, फिर दम्भ नहीं होगा।

विपत्ति चेतावनी है

भगवान् कोई बड़ी आपत्ति भेजते हैं तो ज्यादा अनुग्रह मानना चाहिये। कुन्ती देवीने वरदान माँगा कि विपत्ति दीजिये, क्योंकि विपत्तिमें आप ज्यादा याद आते हैं। कुन्तीने तो वरदान माँगा, हमें बिना माँगे ही भगवान् वरदान देते हैं—

सुखके माथे सिल पड़ो जो नाम हृदयसे जाय।
बलिहारी वा दुखकी जो पल पल नाम रटाय॥

यह अच्छा लगता है। विपत्ति देते हैं उससे एक तो चेतावनी देते हैं कि सावधान होओ और विपत्ति देते हैं आत्माकी सहन-शक्ति बढ़ानेके लिये। विपत्ति अपने तो प्रतिकूल है, किन्तु भगवान्के तो अनुकूल है। जो कुछ होता है भगवान्की मर्जीसे ही होता है। जब भगवान्की मर्जीसे होता है तब अपनी अनुकूलताका क्या मूल्य है। तीन प्रकारकी इच्छासे कोई भी घटना होती है—परेच्छा, अनिच्छा, स्वेच्छा। परेच्छासे कोई घटना होती है तो समझना चाहिये भगवान् स्वयं कराते हैं।

अनिच्छासे जो कुछ हो वह समझे भगवान् स्वयं करते हैं।

स्वेच्छासे—भगवान्का भजन, ध्यान करना चाहिये।

परेच्छा, अनिच्छाको भगवान्का भेजा हुआ पुरस्कार समझना चाहिये और स्वेच्छासे भगवान्का भजन, ध्यान करना चाहिये। यही सार बात है।

प्रवचन-तिथि— ज्येष्ठ कृष्ण ८, संवत् २००१, मंगलवार, दिनांक १३-५-१९४४, रात्रि, गंगातट, स्वर्गाश्रम।

आनन्दमय परमात्माका ध्यान

निराकार, साकार भगवान् एक ही वस्तु हैं। निराकारका सुगम ध्यान बताया जाता है, बालक भी कर सकता है। ध्यान होनेके बाद यथार्थ परमात्माके स्वरूपका ज्ञान हो जाय तो बेड़ा पार है। यह स्थान पवित्र तो है ही, बल्कि परम पवित्र है। आसन लगाकर परमात्माका ध्यान करे। ध्यानमें एकान्तकी आवश्यकता है। यह बात तो यहाँ स्वाभाविक ही है। वैराग्य भी यहाँ स्वाभाविक है। वन, गिरिगुहा, गंगा वैराग्यको उत्पन्न करनेवाले हैं। वह ध्यान बहुत ही सुगम और सहज है। परमात्माका स्वरूप कैसा है? आकाशकी तरह। आकाश जड़ है परमात्मा चेतन है। परमात्मा आनन्दस्वरूप है। उस आनन्दका ज्ञान आनन्दको ही है। बर्फका ढेला जिस प्रकार गंगाजीमें डाल दें, उसके चारों ओर जल-ही-जल है, उसी प्रकार अपने-आपको आनन्दके सागरमें डाल दे। आनन्द अनुभवकी चीज है, बुद्धिसे समझा जा सकता है। इस प्रकार समझे कि नीचे-ऊपर बाहर-भीतर, आनन्द-ही-आनन्द परिपूर्ण हो रहा है।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥

(गीता १३। १५)

वह चराचर सब भूतोंके बाहर-भीतर परिपूर्ण है, और चर-अचररूप भी वही है। और वह सूक्ष्म होनेसे अविज्ञेय है तथा अति समीपमें और दूरमें भी स्थित वही है।

प्रवचन-तिथि—ज्येष्ठ कृष्ण ९, संवत् २००१, बुधवार, दिनांक १४-५-१९४४, प्रात:काल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

जैसे आकाशमें बादल है। बादलके बाहर भीतर आकाश-ही-आकाश परिपूर्ण हो रहा है। ऐसे ही परमात्मा आकाशकी तरह सारे भूतोंमें प्रविष्ट होकर परिपूर्ण हो रहे हैं। परमात्मा आकाशसे भी सूक्ष्म है, ज्ञानस्वरूप है, इसलिये मूर्खोंके समझमें नहीं आते। जिन्हें यह निश्चय है कि परमात्मा सब जगह हैं, उनके लिये सब जगह हैं। विश्वास करनेपर प्रत्यक्ष प्रतीत होने लगते हैं। आनन्दस्वरूपसे नहीं प्रतीत हो तो मान लेना चाहिये कि भगवान् हैं। भगवान् कैसे हैं वे स्वतः ही बतायेंगे। केवल सत्तामात्रके ज्ञानसे भगवान् प्राप्त हो सकते हैं। भगवान् हैं, सब जगह हैं, सर्वशक्तिमान् और सर्वान्तर्यामी हैं। इसके पूर्वमें बताया है—

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

(गीता १३। १३)

वह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर कानवाला है। क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है।

परमात्मा हैं इसके लिये ये श्लोक हैं—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(गीता २। १६)

असत् वस्तुकी तो सत्ता नहीं है और सत्का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनोंका ही तत्त्व तत्त्वज्ञानी पुरुषोंद्वारा देखा गया है।

परमात्माके लक्षण इन श्लोकोंमें बताये गये हैं—

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥

(गीता १२। ३-४)

परन्तु जो पुरुष इन्द्रियोंके समुदायको भली प्रकार वशमें करके मन, बुद्धिसे परे सर्वव्यापी, अकथनीय स्वरूप और सदा एकरस रहनेवाले, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको निरन्तर एकीभावसे ध्यान करते हुए भजते हैं, वे सम्पूर्ण भूतोंके हितमें रत और सबमें समान भाववाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं।

परमात्मा नित्य और सत् है, परमात्मा अक्षर है, उसका कभी नाश नहीं होता। निराकार होनेसे संकेतसे उन्हें नहीं बताया जा सकता और आकाशसे भी सूक्ष्म है, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप और सर्वव्यापी है, आकाशसे भी बढ़कर व्यापक है। आकाश जैसे बादलमें व्यापक है उसी प्रकार परमात्मा सबमें व्यापक है, किन्तु उनके ज्ञानस्वरूप होनेके कारण मनकी वहाँ पहुँच नहीं है। वह नित्य है, अटल है, ध्रुव है। सबका नाश होनेपर भी उनका नाश नहीं होता।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥

(गीता १३। २७)

जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतोंमें परमेश्वरको नाशरहित और समभावसे स्थित देखता है वही यथार्थ देखता है।

परमात्मा सारे भूतोंमें समभावसे स्थित है। बादलोंका अभाव

होनेपर भी जिस प्रकार आकाशका नाश नहीं होता, इसी प्रकार सारे भूतोंका नाश होनेपर भी उनका नाश नहीं होता। परमात्मा चेतन है, ज्योतियोंका ज्योति है। जितनी ज्योतियाँ प्रकाशित होती हैं, वे परमात्मासे होती हैं। हमलोग जितने बैठे हैं, उनमें जो चेतनता है, वह परमात्माका ही एक अंश है। वह परमात्मा अनन्त ज्ञानस्वरूप है, ज्ञान ही आनन्द है। वह आनन्द कैसा है, पूर्ण आनन्द, अपार आनन्द, घन आनन्द, अचल आनन्द, नित्य आनन्द, सम आनन्द—ऐसा परमात्माका स्वरूप है, इस तरह नेत्रोंको बंद करके पहले वाणीसे बार-बार आवृत्ति करे। जिस प्रकार हमलोग भगवान्‌के नामका जप करते हैं। इस प्रकार आनन्दका जप करे। आनन्दमयका ध्यान करते-करते जिनका मन, बुद्धि परमात्मामें एक हो जायेंगे, जो अपनेको भुलाकर परमात्मामें स्थित हो गये, ऐसा पुरुष परमात्माको प्राप्त होकर फिर लौटकर नहीं आता। यह साधन अभेदकी दृष्टिसे बताया।

एकान्तमें बैठकर ध्यान करे। आनन्दका सागर है, ऐसा आनन्द बाहर-भीतर रोम-रोममें परिपूर्ण देखे। आनन्दमय! आनन्दमय! आनन्दमय! आनन्द-ही-आनन्द। चाहे आनन्दमय कह दो, चाहे नारायण कह दो, एक ही बात है। आनन्द ही परमात्मा है। कैसा आनन्द? शान्तिमय आनन्द, अहा! कैसा आनन्द है, ज्ञानस्वरूप है। ऐसा आनन्द चारों ओर परिपूर्ण हो रहा है। पूर्ण आनन्द! अपार आनन्द! घन आनन्द! ऐसे आनन्दमें चूर रहे।

आनन्द आनन्द आनन्द

श्रद्धा, प्रेम, निष्कामभावसे सेवा, भजनका महत्त्व

ऊँचे दर्जेका भजन, ध्यान वही है जो भजन ध्यानके लिये ही हो। उसकी वृद्धिके लिये हो या कुछ हेतु रखना हो तो भगवत्प्रेम रखो। हेतुरहित प्रेम ही विशुद्ध प्रेम है। इस प्रेमके आगे भगवान् बिक जाते हैं। जो भजन प्रेमपूर्वक होता है वही मूल्यवान् है। भावसे कितना अन्तर हो गया। क्रियामें भी अन्तर है। बोल-बोलकर जो जप करते हैं, उसकी अपेक्षा श्वाससे जप करना उत्तम है, उससे भी बढ़कर मानसिक जप है।

सेवाके बारेमें भी वही बात है। किसीको आप कोई चीज देते हैं, किन्तु तिरस्कारपूर्वक देते हैं तो वह दान तामसी है या अपना काम करनेवालेको कुछ दिया जाता है, वह दान राजसी है। सारे साधन और सारी क्रिया भावके ऊँचे होनेसे ऊँचे दर्जेकी हो जाते हैं। बड़ी भारी क्रिया की, यज्ञ किया। किसलिये किया? दूसरेका अनिष्ट करनेके लिये तो वह तामसी हो गया। एक भाई निष्कामभावसे छोटा-सा काम करता है। यह छोटा-सा कार्य भी महान् भयसे तारनेवाला है। भाव ही प्रधान है। सौ वर्षतक अतिथिको बिना प्रेमके भोजन करानेवाली एक स्त्रीसे एक अतिथिको आदर-सत्कारपूर्वक प्रेमसे एक बार भोजन करानेवाली स्त्री उत्तम है। ईश्वर, महात्मा पुरुष समझकर भोजन कराया जाय उसकी तो बात ही अलग है। राजा युधिष्ठिरने अश्वमेध यज्ञ किया। जिसने दस माँगा उसे सौ दिया गया, जिसने हजार माँगा उसे दस हजार दिया

प्रवचन-तिथि— ज्येष्ठ कृष्ण ९, संवत् २००१, बुधवार, दिनांक १४-५-१९४४, दोपहर, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

गया, माँगसे दस गुना अधिक दिया जाय यह आदेश कर दिया। घीका तालाब भर दिया। ऐसा यज्ञ हुआ कि ऋषि महात्मा वाह-वाह करने लगे। ऐसा यज्ञ आजतक हुआ ही नहीं, लाखों आदमियोंको वस्त्र-भोजन दिया गया। वहाँ एक नेवला आया और सभामें मनुष्यकी बोलीमें कहने लगा—आपलोग जो प्रशंसा करते हैं यह झूठी है। इसमें कोई तथ्य नहीं है। मैंने तपोवनमें इससे बहुत श्रेष्ठ यज्ञ देखा है। कुरुक्षेत्रमें शिलोञ्छवृत्तिसे जीविका चलानेवाले एक ब्राह्मण रहते थे। एक बार भयंकर अकाल पड़ा। कई दिनों भूखे रहनेके बाद एक दिन उन्हें सेर भर जौ प्राप्त हुए। उन्होंने उसका सत्तू तैयार किया एवं बलिवैश्वदेव आदि करके पति-पत्नी एवं पुत्र-पुत्रवधू भोजनके लिये बैठे। इतनेमें ही कोई अतिथि ब्राह्मण वहाँ आ पहुँचा। अतिथिका दर्शन करके उन सबका हृदय खिल उठा। ब्राह्मणने आदरपूर्वक बैठकर अपने हिस्सेका सत्तू आग्रहपूर्वक अतिथिको अर्पण कर दिया, किंतु उतनेसे उसकी भूख शान्त न हुई। उसकी पत्नी, पुत्र, पुत्रवधूने क्रमशः अपने-अपने हिस्सेका सत्तू स्वयं अत्यन्त भूखे रहनेपर भी आदरपूर्वक अतिथिको दिलाकर उसे सन्तुष्ट किया। उन महात्मा ब्राह्मणका यह त्याग देखकर अतिथि बहुत प्रसन्न हुआ। वह अतिथि साक्षात् धर्म थे। उन्होंने ब्राह्मणकी बहुत प्रशंसा की एवं उसे सपरिवार दिव्यलोकको भेज दिया। उनके जानेके बाद मैं अपने बिलसे बाहर निकला और जहाँ अतिथिने भोजन किया था, उस स्थानपर लोटने लगा। उस समय सत्तूकी गंध सूँघने तथा वहाँ ब्राह्मणके हाथ धोनेसे गिरे हुए जल एवं सत्तूकणोंके स्पर्श होने तथा ब्राह्मणकी तपस्याके प्रभावसे मेरा आधा शरीर सोनेका हो गया। उसके बाद मैं आपके यज्ञकी

प्रशंसा सुनकर इस आशासे आया था कि मेरा बाकी शरीर भी सोनेका हो जाय, किन्तु मेरा शरीर सोनेका न हो सका अपितु कीचड़ लग गया इसीलिये मैंने हँसकर कहा था कि यह यज्ञ ब्राह्मणके दिये हुए सेरभर सत्तूके बराबर भी नहीं हुआ है।

कहनेका अभिप्राय यह है कि कहाँ एक ब्राह्मणको भोजन कराना, कहाँ लाखों ब्राह्मणोंको भोजन कराना, किन्तु वहाँ कितना त्याग है, अपने प्राणोंकी आहुति देनेको तैयार है। इसी प्रकार यदि साक्षात् परमात्मा समझकर भोजन कराया जाय तो और भी उत्तम है। जितनी अधिक श्रद्धा, आदर, सत्कार होता है, उतनी ही वह चीज मूल्यवान् होती है। इसी प्रकार भजनकी बात है। जो भजन आदर, प्रेम, सत्कारपूर्वक किया जाता है, वह उतना अधिक मूल्यवान् होता है और बिना श्रद्धाके जो यज्ञ दान तप किये जाते हैं वे तो निष्फल होते हैं।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥

(गीता १७। २८)

हे अर्जुन! बिना श्रद्धाके किया हुआ हवन, दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ शुभ कर्म है—वह समस्त 'असत्'—इस प्रकार कहा जाता है; इसलिये वह न तो इस लोकमें लाभदायक है और न मरनेके बाद ही।

स्त्री अपने पतिकी सेवा करती है, किन्तु यदि दुःखित होकर करती है, नहीं करनेसे तो वह अच्छी है, किन्तु उस सेवासे कल्याण हो जाय यह बात नहीं है, और कठपुतलीकी तरह संकेतमात्रसे नाचे तो एक ही आज्ञाके पालनसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाय। अपनी निजकी कोई इच्छा है ही नहीं। वह तो यही

समझती है कि इनकी आज्ञाके अनुसार अपने-आपको अर्पण कर देना है। वर्षों साधन सेवा करनेसे जो चीज प्राप्त नहीं होती, वह एक मिनटके कार्यसे प्राप्त हो सकती है, इसलिये हमें जो कुछ करना है प्रेम और श्रद्धासे करना चाहिये। आप व्यापार करते हैं, खेती भी करें वह भी निष्कामभावसे करें तो आपको वह व्यापार एवं खेती भी मुक्ति देनेवाले हैं। वास्तवमें भाव ही प्रधान है। हमें विलम्ब हो रहा है। हम भजन, ध्यान करते हैं, बेगारपूर्वक करते हैं, भगवान् तो अन्तर्यामी हैं, लाभ तो हमारी श्रद्धाके अनुसार ही होता है। हम जो कार्य करते हैं वह कम मूल्यवान् है, इसलिये उसका फल प्रत्यक्ष नहीं होता। द्रौपदीने पुकारा—हे नाथ! हे नाथ! सकामभाव था, भगवान् आ गये। यदि निष्कामभाव हो तो बात ही क्या, हम भगवान्‌को प्रेमसे बुलाते कहाँ हैं, इसीलिये तो भगवान् आते नहीं। प्रेमसे बुलाये तो वे साक्षात् प्रकट होकर अर्पित वस्तु ग्रहण करनेको तैयार हैं।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।

भगवान्‌की भक्ति कैसी करनी चाहिये? जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने पतिकी सेवा करती है। यह बात करनेसे ही समझमें आ सकती है। व्याख्यानसे समझमें नहीं आ सकती। एक बार सत्यभामा द्रौपदीसे मिलने गयीं। द्रौपदीसे कहा—मेरे

तो एक पति हैं वे ही मेरे अधीन नहीं हैं, तेरे पाँच पति हैं वे कैसे तेरे अधीन हैं, तू कोई डोरा, यंत्र, मंत्र जानती है क्या? यदि कोई जानती हो तो मुझे बता। द्रौपदीने कहा—तू जिस प्रकारकी बात कहती है, वह तो नीच स्त्रियोंकी बात है, मेरे पति मेरेपर कृपा करते हैं, इसका कारण सुन—मेरे पति जब बाहरसे आते हैं तो उनके बैठनेपर मैं बैठती हूँ, वे सेवकोंसे जल मँगाते हैं तो मैं दौड़कर लाती हूँ। जब मेरे पति राजा थे, मैं आय-व्ययका सब हिसाब रखा करती थी और अतिथियोंको भोजन कराकर भोजन करती हूँ। तू भी ऐसा ही कर, इस प्रकार पातिव्रत धर्मका आचरण कर।

पतिव्रता स्त्रीके बार-बार रोमांच होता है, अश्रुपात होते हैं। वह पतिकी आज्ञा-संकेतकी प्रतीक्षा करती है। गोपियाँ प्रतीक्षा करती थीं कि भगवान् कब जंगलसे आयेंगे। पतिव्रता स्त्री भी इस प्रकार अपने पतिकी प्रतीक्षा करती रहती है। पतिके मनके अनुकूल पतिको साक्षात् परमेश्वर समझकर उसकी सेवा करती है। वह पतिकी सेवा नहीं साक्षात् परमात्माकी सेवा है। इसी प्रकार पुत्र माता-पिताकी सेवा करे तो पुत्रका कल्याण हो जाता है और भगवान्‌की सेवा करे, उससे कल्याण हो जाय, उसमें आश्चर्य ही क्या है।

नारायण नारायण नारायण

निर्भरताका स्वरूप

प्रश्न—भगवान् और उनके भक्तोंके गले किस प्रकार पड़ा जाय।

उत्तर—भगवान्के गले पड़ना तो बताया जा सकता है। भगवान्पर निर्भर होना ही उनके गले पड़ना है, जो कुछ भगवान् करें हर्षके साथ स्वीकार करे—

द्वारे धनीके पड़ रहे धक्का धनीके खाय।
कबहुँक धनी निवाजिहै जो दर छाड़ न जाय॥

भगवान्के ऊपर ही निर्भर हो जाय।

प्रश्न—निर्भर होनेकी शक्ति तो हो।

उत्तर—शक्ति न हो वह गले पड़े ही क्यों? निर्भरताका तत्त्व इतना गहन है कि मैं कई बार बताता हूँ। मेरे मनमें ही कहनेके भाव बाकी रह जाते हैं, शब्दोंके द्वारा मनका भाव व्यक्त नहीं किया जा सकता।

श्रीराजाजी—कितना समय लगेगा, कल कहिये दो-तीन घंटा जितना लगे।

उत्तर—निर्भरताके विषयमें यह कहना नहीं बनता कि आज कहो या कल कहो, कहो, मत कहो, निर्भरताका नमूना बताया है। उस निर्भरताके तत्त्वको समझनेके बाद तो कोई समझनेकी बात रहती ही नहीं, उससे काल भी डरता है। प्रह्लादजी निर्भर थे। उनके शब्द ही ऐसे हैं, भगवान् सब जगह हैं। परन्तु प्रह्लादका इतना बड़ा दृष्टान्त रहते हुए भी निर्भरता

प्रवचन-तिथि—ज्येष्ठ कृष्ण ९, बुधवार, सायंकाल, संवत् २००१, दिनांक १४-५-१९४४ टीबड़ी, स्वर्गाश्रम।

व्यक्त नहीं की जा सकती। निर्भरतामें भगवान् बिक जाते हैं, किन्तु वह निर्भरता भगवान् बिक जायँ, इस उद्देश्यसे नहीं होनी चाहिये। नरसी भी निर्भर थे, उनके इतिहासमें थोड़ी कामना आ जाती है। प्रार्थना भी आती है। प्रह्लादके यह बात नहीं थी। निर्भरतामें तो स्तुतिकी भी आवश्यकता नहीं रहती, उसकी चिन्ता फिर करनी हो तो भगवान् ही करें। वह तो योगक्षेम भी नहीं चाहता। **निर्योगक्षेम आत्मवान्।** यहाँ इतने आदमी हैं, मुझे निर्भरताका उच्चकोटिका गुण किसीमें नहीं दीखता। भगवान् बिना बनाये पंच क्यों बनें। कृपा है यह बात हम समझ लें तो वे भार ले लें।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २९)

सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है।

ईश्वरकी, महात्माओंकी जो सुहृदता है, उसका तत्त्व ज्यों-ज्यों मनुष्य समझता जाय, उसके आनन्दकी सीमा ही न रहे। जिसपर निर्भर हो जाय उसके विधानकी प्रतीक्षा करे। उसका क्या आदेश है उसीमें मग्न है। भगवान् उसे परीक्षाके लिये काटें तो काटनेपर भी हँसे, उसे दुःख न हो। लौकिक दृष्टांतका थोड़ा अंश बताता हूँ। पूरा लागू नहीं पड़ता, जिस तरह किसीके द्वारपर शरण गिर जाय, अपराधी है और अपनेको अपराधी मानता है। जिसके पास गया वह मारपीट करे, धक्का दे। ऐसा व्यवहार भी इसे बुरा नहीं लगता। तब लात मारनेवालेपर, धक्का देनेवालेपर असर पड़ता है उसका भाव बदल जाता है। मारपीट उसे भारी क्यों नहीं लगती? वह समझता है कि काम हो रहा है। इस

प्रकार भगवान्‌के निर्भर हो जाय। भगवान् परीक्षा लें तब भी उसके प्रसन्नता होती है। पैर काटे तो भी आनन्द हो, पैरके दर्द हो, अन्तःकरणमें आनन्द हो। सेवक स्वामीके आदेशकी प्रतीक्षा करता रहे। काम कर दिया तो अपनेको कृत्यकृत्य समझे।

आज्ञापालनमें प्रसन्नता, विधानमें प्रसन्नता, हर समय प्रसन्न होता रहे। अध्यात्मविषयके स्वार्थकी बात भी उसे अच्छी नहीं लगे। भगवान् वरदान दें तो वह समझे कि यह मेरे लिये कलंक है। मैं कामनाको लेकर निर्भर हुआ हूँ। जो कुछ लाभ हो उसमें अपना पुरुषार्थ नहीं समझे। यह समझे कि शक्ति भी भगवान् दे रहे हैं। सब काम वे ही कर रहे हैं और मेरे माथे मढ़ रहे हैं। आप ही मेरेमें प्रविष्ट होकर मेरेसे करा रहे हैं। लोगोंमें यह ख्याति कर रहे हैं कि यह करता है। इतना अचल निर्भर है कि कोई भी दृष्टान्त लागू नहीं पड़ता।

स्त्रीको पतिपर निर्भर कहा जाय तो भी पूरा लागू नहीं पड़ता, राजाका भृत्य राजापर निर्भर है, वह बात भी पूरी नहीं घटती। उसे तो जितना मारे, पीटे, ठोंके, उतनी ही उसके प्रसन्नता हो। मारना-पीटना यही है कि ईश्वरका विधान दुःख-पर-दुःख आकर प्राप्त हो। भगवान्‌की किसी भी क्रियामें दोषदृष्टिकी गुंजाइश हो—यह बात ही नहीं है। हमलोग तो थोड़ी-सी क्रिया मनके विपरीत हुई तो भगवान् और महात्मापर दोषबुद्धि कर लेते हैं। जो उनपर निर्भर है, उसे तो दोष दीखते ही नहीं। सारी विपरीत क्रियामें अनुकूलता-अनुकूलता ही प्रतीत होती है। परमात्माकी प्राप्तिवाले पुरुषके लक्षण चाहे उसमें घटा लो, वह कभी विचलित नहीं होगा। कहना नहीं चाहिये, किन्तु भगवान् भी उसे विचलित नहीं कर सकते। उसमें अहंकारकी गुंजाइश ही नहीं है। लड़का

माँ, बापके कंधेपर बैठा है, लड़केको क्या परिश्रम हुआ। लड़केको पिता गंगाजीमें डाल दे तो रोना चाहिये, किन्तु वह हँसता है। बालक माँपर निर्भर है, यह उदाहरण भी वहाँ लागू नहीं पड़ता। वह समझता है जो हो रहा है, भगवान्‌के बल और बुद्धिसे हो रहा है, तेरेमें तो बल-बुद्धि कुछ है ही नहीं।

जैसे सूर्यकी हजारों किरणें होती हैं, इस प्रकार ये निर्भरताकी किरणें हैं। जितनी बात पैदा होती है वह कही नहीं जा सकती। वाणी और मन पंगु हो जाते हैं, फिर भी यह बात होती रहे तो थोड़ा-थोड़ा भाव समझमें आता जाय।

नारायण नारायण नारायण

लोग कहते हैं हमारे तो एक रामका ही भरोसा है। भगवान्‌के ऊपर निर्भर होना बहुत ही उच्चकोटिकी बात है। यदि मनुष्य भगवान्‌की शरण हो जाय तो बेड़ा पार हो जाय। नरसी मेहता भी भगवान्‌पर निर्भर थे, भगवान्‌के भक्त ठहरे, किन्तु उनकी जीवनीमें सकाम-निष्काम सभी बातें आ जाती हैं। भगवान्‌पर हुण्डी काट दी, दौहित्रीके विवाहमें माहेराके लिये भी भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं, श्राद्ध होता है उसमें भी भगवान्‌को बुलाते हैं। भगवान्‌पर निर्भरता तो बहुत ऊँचे दर्जेकी है, किन्तु सकामभाव आ जाता है। हृदयमें चाहे न हो, ऊपरसे तो दीखता है। प्रह्लादका भाव उच्चकोटिका समझा जाता है। हमलोगोंको भी प्रह्लादकी तरह भगवान्‌पर निर्भर होना चाहिये। भगवान्‌पर निर्भर होनेसे यह विषय समझा भी जाता है। भगवान्‌की शरण होनेसे शरणापन्नका भाव समझा जा सकता है। सत्संग करनेवाला ही सत्संगका तत्त्व समझता है। सेवा करनेवाला ही सेवाका तत्त्व समझता है। इस विषयका तत्त्व समझनेके लिये हमें भगवान्‌की शरण होना चाहिये।

अपना सर्वस्व मालिकको सौंप देना चाहिये। वास्तवमें तो सब चीज मालिककी है। अपना कुछ है ही नहीं। हमलोग अपना मानते हैं, यह गलती करते हैं। यह मेरा धन, यह मेरा मकान यह सब धारणा गलत है। सारी चीजें भगवान्‌की हैं। अपना कुछ नहीं है। आप इस मकानको, इस शरीरको अपना बताते हैं, यह आपका नहीं है, यदि आपका होता तो यह मरनेके बाद आपके साथ जाता। जब शरीर ही नहीं जा सकता तो स्त्री, पुत्र, मकान आदि जा ही कैसे सकते हैं। आपके भीतर जो बल, बुद्धि है, वह भी भगवान्‌की ही है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है कि बुद्धिमानोंकी बुद्धि और बलवानोंका बल मैं हूँ। भगवान् इसे निकाल लें तो हम कुछ नहीं कर सकते। हमारे द्वारा जो कुछ अच्छा कार्य होता है भगवान् ही करवाते हैं, जैसे बच्चेका हाथ पकड़कर गुरु क, ख, ग, घ लिखवाते हैं, इसी प्रकार भगवान् हमसे करा रहे हैं, ऐसा समझना चाहिये। आपमेंसे बुद्धि भगवान् निकाल लें तो आप कुछ सोच नहीं सकते, बल निकाल लें तो आप कुछ नहीं कर सकते। आप भजन, ध्यान कुछ नहीं कर सकते। यही समझना चाहिये कि भगवान् ही कराते हैं। हमारा शरीर, मन, वाणी सब भगवान्‌के औजार हैं। इसमें हम यह अभिमान कर लें कि मैं खाता हूँ, मैं पीता हूँ, मैं चलता हूँ तो यह मूर्खता है। ज्ञानके सिद्धान्तसे भी और भक्तिके सिद्धान्तसे भी। ज्ञानके सिद्धान्तके अनुसार गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं। आत्मा अकर्ता है, इनसे भिन्न है। इसलिये सारी क्रिया जो होती है गुणोंका ही गुणोंमें बर्तना है। इसमें ज्ञानी आसक्त नहीं होता। भक्तिके मार्गमें भी भगवान् कहते हैं—

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥
मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि॥

(गीता १८। ५७-५८)

सब कर्मोंको मनसे मुझमें अर्पण करके तथा समबुद्धिरूप योगको अवलम्बन करके मेरे परायण और निरन्तर मुझमें चित्तवाला हो। उपर्युक्त प्रकारसे मुझमें चित्तवाला होकर तू मेरी कृपासे समस्त संकटोंको अनायास ही पार कर जायगा और यदि अहंकारके कारण मेरे वचनोंको न सुनेगा तो नष्ट हो जायगा अर्थात् परमार्थसे भ्रष्ट हो जायगा।

ये श्लोक बड़े महत्त्वपूर्ण हैं, भक्तिमार्गके हैं। भगवान् कहते हैं—मेरे परायण हो जा, मेरी शरण आ जा। सारी क्रियाओंको भगवान्के अर्पण करना—यह कर्मोंको भगवान्के अर्पण करना है। शरीरको भगवान्के अर्पण करना यह अपने-आपको अर्पण करना है। कठपुतलीको जिस प्रकार सूत्रधार नचाता है, उसी प्रकार अपनी बागडोर भगवान्के हाथमें सौंप देनी चाहिये। भगवान्के हाथमें बागडोर चली जाती है तो उससे फिर पापकर्म होते ही नहीं। पापकर्म होते हैं तो बागडोर कामके हाथमें हैं, भगवान्के हाथमें नहीं। अर्जुनने पूछा—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

(गीता ३। ३६)

हे कृष्ण! तो फिर यह मनुष्य स्वयं न चाहता हुआ भी बलात् लगाये हुएकी भाँति किससे प्रेरित होकर पापका आचरण करता है।

भगवान् उत्तर देते हैं—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(गीता ३। ३७)

रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला अर्थात् भोगोंसे कभी न अघानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू इस विषयमें वैरी जान।

यह काम ही वैरी है, पापमें लगानेवाला है, यह महान् खानेवाला है, तुम्हारा शत्रु है, इसे मार डालो। हृदयसे सारी क्रिया भगवान्‌के अर्पण कर देनी चाहिये।

भगवान् कहते हैं चित्तसे सारे कर्मोंको मेरे अर्पण कर दो। समझे कि भगवान् ही मेरे हृदयमें स्थित होकर सारी क्रिया करवा रहे हैं। **मत्परः** मेरे परायण हो। परायण क्या? जिस प्रकार कठपुतली सूत्रधारके परायण है। हमारे लिये भगवान्‌ने जो कुछ विधान कर दिया, उसीमें सन्तुष्ट रहना चाहिये। प्रभुके विधानको लीला समझकर क्षण-क्षणमें मुग्ध होना चाहिये। हानि-लाभ जो कुछ परिस्थिति आकर प्राप्त होती है, वह भगवान्‌का भेजा हुआ पुरस्कार है। परमात्मापर ही हम निर्भर रहें, परमात्माकी लीला समझते हुए प्रसन्नचित्त रहें, यह अपने-आपको भगवान्‌के अर्पण करना है।

मन, बुद्धिको परमात्मामें लगा दे, यह बात कठपुतलीसे विशेष है, क्योंकि कठपुतलीमें मन, बुद्धि नहीं है, आपमें भी मन, बुद्धि नहीं होते तो आपपर भी यह कानून लागू नहीं पड़ते। हमलोग जीवित हैं इसलिये लागू पड़ते हैं। लागू पड़े तो क्या समस्या आयी, अपितु बड़े लाभकी चीज है।

आप समस्या समझते हैं इसलिये समस्या कहा। असली बात तो यह है कि भगवान् हमें आज्ञा देते हैं, उसका पालन हमसे हो जाय तो इससे बढ़कर कोई लाभकी चीज है ही नहीं, स्वाति बूँदके पड़नेसे पपीहेको कितना आनन्द होता है, इससे भी बढ़कर उसे आनन्द होता है जो भगवान्‌की आज्ञाकी ओर देखता रहता है। पपीहेकी बड़ी लालसा रहती है, पंख टूट जाते हैं, स्वाती बूँदके लिये सब कुछ सहन कर लेता है। भगवान्‌की आज्ञाका पालन मन, बुद्धिको भगवान्‌में लगाना है। भगवान्‌की आज्ञाके पालनसे उसे जो प्रसन्नता होती है, वह पपीहेको नहीं होती, किन्तु यह बात समझमें तभी आ सकती है, जब हमारे हृदयमें श्रद्धा हो। जबतक श्रद्धा नहीं होती, तबतक हमारी समझमें नहीं आती। भगवान्‌का, महात्माका उपदेश है या संकेत है या प्रेरणा है, उसके लिये हमें ऐसी ही आतुरता और लालसा रखनी चाहिये। जैसे प्यासे आदमीको पानी मिल जानेपर प्रसन्नता होती है, इससे भी उसे अधिक प्रसन्नता होती है। यह तो आज्ञा मिलनेकी बात बतायी, फिर उसका पालन स्वतः होता है। उस समयकी तो बात ही क्या है, पालन कैसा? भजन, ध्यानकी आज्ञा जो करनेमें सुगम और फल प्रत्यक्ष है ही। किन्तु वह फल चाहता ही नहीं, वह तो समझता है कि मैं तो केवल भगवान्‌की आज्ञाका पालन करता रहूँ, भगवान् उसका फल बताते हैं—

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि॥

(गीता १८।५८)

उपर्युक्त प्रकारसे मुझमें चित्तवाला होकर तू मेरी कृपासे समस्त संकटोंको अनायास ही पार कर जायगा और यदि अहंकारके कारण मेरे वचनोंको न सुनेगा तो नष्ट हो जायगा अर्थात् परमार्थसे भ्रष्ट हो जायगा।

भारी संसार सागरसे पार हो जाता है। आगे कहते हैं कि यदि मेरी बातकी ओर ध्यान नहीं देगा तो पतन हो जायगा। शरण न होनेमें हेतु क्या है? अहंकार, मेरा आश्रय न लेकर अहंकारका आश्रय लेगा तो पतन हो जायगा। जितना उत्तम कार्य हो रहा है उसका कर्ता मैं हूँ, किन्तु तू अपनेको उसका कर्ता समझेगा तो तेरा पतन हो जायगा। तुम्हारी बुद्धिका निश्चय है कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, वह झूठ हो जायगा। तुम्हारी प्रकृति बलात् तुम्हें युद्धमें लगा देगी। युद्ध तो करना ही पड़ेगा। मेरी शरण होकर युद्ध करनेका फल होगा, तुम संसार सागरसे पार हो जाओगे और अहंकारसे करनेपर पतन होगा, युद्ध भी करना पड़ेगा और पतन भी होगा। इसलिये यही बात उत्तम है कि भगवान्की शरण हो जाना चाहिये।

देखो, यहाँ कैसा आनन्द हो रहा है, मानो शान्ति और आनन्दकी बाढ़ आ गयी हो। यह शान्ति और आनन्द भगवान्का निराकार स्वरूप है। उसमें हर समय हमें मगन रहना चाहिये।

खूब ध्यान देकर समझना, हमारे घरमें बिजलीका बल्ब और पंखा लगा हुआ है। कोई भाई आये और कहे प्रकाश होना चाहिये, झट स्विच दबा दिया प्रकाश हो गया, कहे गर्मी बहुत है, पंखा चला दिया, रेडियो चला दिया, उसने पूछा यह सब किसका है? कहा मेरा है। उसने खूब प्रशंसा की कि बड़ी कृपा की, प्रशंसा सुनकर वह फूल जाता है। किसी कारण बिजली

खराब हो गयी, अन्धकार हो गया, कहा बल्ब जलाओ, कहा उपाय नहीं है। कहा रेडियो तो सुनें, कहा सारी बिजली ही खराब हो गयी। तुम कहते थे कि हम करते हैं, हम करते हैं, तुम्हारी हम कहाँ गयी। वास्तवमें मूलमें बिजलीकी शक्ति है। यदि बिजलीकी शक्ति किसी प्रकार विदा हो जाय तो किसीके बापकी सामर्थ्य नहीं कि बल्ब जला सके। इसी प्रकार हमारेमें सारी शक्ति परमात्माकी है, फिर तुम क्यों कहते हो कि हम यह करते हैं। हम यह करते हैं। यह तुम्हारा अहंकार है, झूठा अभिमान लोग करते हैं। एक सेठका कर्मचारी लोगोंकी सेवा करता है, दान देता है, स्वामीकी सम्मति लेकर करता है। लोग प्रशंसा करें और मैं फूल जाऊँ मैं वेतन लेता हूँ, लोग मेरी बड़ाई करते हैं। स्वामी भी एक दिन आ गये। लोग कहने लगे जयदयाल कैसा दान देता है, सेवा करता है, आपने भी कुछ किया क्या? वहाँ मेरा यह कहना कर्तव्य है कि जो कुछ है इनका है, मैंने तो शरीर भी इन्हें बेच रखा है, मैं यदि कुछ नहीं कहूँ और बैठा-बैठा सुनता रहूँ तो जो वास्तवमें मालिक है, उसका लोग तिरस्कार करेंगे तो क्या मैं उस पदपर बना रहूँगा? स्वामी कान पकड़कर निकाल देगा कि तू मेरा कर्मचारी है या स्वामी। वही बात हमलोग करते हैं, धन भगवान्‌का, जीविका भगवान् दे रहे हैं। भगवान् आज रोटियाँ बँद कर दें तो तड़पकर मर जायँ। हमें समझना चाहिये कि हमारे द्वारा जो कुछ कार्यवाही होती है परमात्मा ही करा रहे हैं। हम प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होते हैं, भगवान् इससे प्रसन्न नहीं होते। हमें हमारी प्रशंसाका विरोध करना चाहिये। हम विरोध नहीं करते तो स्वामी समझता है कि यह इस पदपर रखने लायक नहीं है, स्वामी उसे निकाल देते

हैं। संसारमें जो स्वयं मालिक बन जाता है, उसकी बड़ी बेइज्जती होती है। इसमें भी भगवान्‌की दया है। केन उपनिषद्‌की कथा है—देवताओंकी विजय भगवान्‌की कृपासे हो गयी। उनके अहंकार आ गया कि जो कुछ है हम ही हैं। भगवान् यक्षके रूपमें थोड़ी दूरपर खड़े हो गये। इन्द्रने वायुको भेजा। भगवान्‌ने शक्ति खींच ली, वायु देवता तिनका भी नहीं उड़ा सके, फिर अग्नि देवताको भेजा। भगवान्‌ने तिनका रखा, वह नहीं जला सका। तब इन्द्र देवता गये। भगवान् अदृश्य हो गये। आकाशमें पार्वती देवी दिखायी दीं। इन्द्रने पूछा—माता यक्षके रूपमें ये कौन थे? पार्वतीने कहा—साक्षात् भगवान् थे। तुम्हें अभिमान हो गया था, उसे दूर करनेके लिये आये थे।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥

(गीता १५। १२)

सूर्यमें स्थित जो तेज सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमामें है और जो अग्निमें है—उसको तू मेरा तेज जान।

अग्निमें जो तेज है वह भगवान्‌का ही है। भगवान् उसमेंसे अपने तेजको निकाल लें तो अग्नि क्या जला सकते हैं। बुद्धिमें जो कार्यवाही होती है हमें समझना चाहिये यह भगवान्‌की शक्ति है। भगवान्‌की कृपासे ही होता है। हम तो नाममात्रके हैं। भाई लोग भजन, ध्यान, सत्संग करते हैं, समझना चाहिये इसमें भगवान्‌का हाथ है। भगवान्‌की कृपा—दया नहीं होती तो हमलोग यहाँ आ नहीं सकते। भगवान्‌की दया नहीं होती तो हमलोगोंका जन्म ही मनुष्य-शरीरमें नहीं होता। सारी बातें भगवान्‌की कृपासे

हो रही हैं। यह समझना भगवान्‌का रहस्य समझना है। जो समझता है उसके आनन्द और शान्तिका पार नहीं रहता। जो समझता है कि मैं करता हूँ, भगवान् उसीकी फजीहत करते हैं, किन्तु फजीहतमें भी दया भरी है। फजीहत क्यों करते हैं? जैसे माता-पिता बच्चेके फोड़ेमें चीरा दिलाते हैं मवाद निकालनेके लिये, इसी प्रकार अहंकार मवाद है। इस अहंकारके विनाशके लिये भगवान् हमारी फजीहत करते हैं। यह फजीहत नहीं वास्तवमें शिक्षा है, चेतावनी है। भगवान् हमें शुद्ध बना रहे हैं, हमें भगवान्‌की दयाको देख-देखकर मुग्ध होना चाहिये। हम जो कुछ चेष्टा कर रहे हैं भगवान् ही हमसे करा रहे हैं। यह सब भगवान्‌की लीला है। हम जो कुछ सेवा कर रहे हैं, दान कर रहे हैं, यह सेवा भी भगवान्‌की ही हो रही है। किन्तु हम समझते नहीं। इस श्लोकका भाव समझना चाहिये—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २९)

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपोंका भोगनेवाला, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है।

इस श्लोकका भाव भी भगवान्‌के निर्भर होनेपर ही समझा जा सकता है। इसके भावको समझनेका फल होगा निरन्तर भजन। किन्तु जबतक हम संसारके गुलाम हो रहे हैं तबतक हम समझे कहाँ? जब हम भगवान्‌के निर्भर हो जायेंगे, तब काल और मृत्यु भी हमसे डरेंगे। दुर्वासा-जैसे ऋषि जो क्रोधकी मूर्ति

हैं। भगवान्‌के भक्तोंसे डरते हैं। आज एक बादशाहका सिपाही आकर हमें धमका देता है, किन्तु वायसरायसे हमारा सम्बन्ध हो जाय, हम उसके आश्रित हो जायँ, सिपाही समझ ले कि इसपर वायसरायकी पूर्ण कृपा है तो सिपाही हमें देखकर काँपने लगता है। इसी प्रकार जो भगवान्‌के शरण हो जाता है उससे मृत्यु और काल काँपते हैं। ब्रह्मादि उसकी स्तुति गाते हैं। जिन देवताओंकी हम स्तुति गाते हैं वे हमारी स्तुति गावेंगे, किन्तु देवता लोग हमारी स्तुति गावें इस भावसे भगवान्‌के आश्रित होना यह नीचा भाव है। भगवान् और उनकी शक्तिमें आगे जाकर कुछ अंतर नहीं रहता, किन्तु वह यह नहीं कहता कि मेरी ऐसी शक्ति है। यदि वह ऐसा कहने लगे तो अग्नि और वायु-जैसी ही उसकी दशा हो। बिजलीके आश्रित हो जाता है। बिजलीका करेन्ट उसमें आ जाता है, जो बिजलीकी शक्ति है वही उसकी शक्ति हो जाती है। इसी प्रकार परमात्माके आश्रित होनेसे परमात्माका करेन्ट उसमें आ जाता है। हमलोगोंने ऐसे शक्तिशालीको छोड़कर किसका आश्रय लिया है। परमात्माको छोड़कर आप किसके गुलाम हो रहे हैं। यह गुलामी छोड़कर आप परमात्माके आश्रित हो गये तो ब्रह्मादिक देवता भी आपकी स्तुति गावेंगे। हमलोग इस समय अहंकार और प्रकृतिके आश्रित हो रहे हैं हमारी फजीहत हो रही है। जबतक इसके आश्रित रहोगे तुम्हारी फजीहत होती रहेगी।

भगवान् कहते हैं कि तू युद्ध नहीं करेगा ऐसा हो नहीं सकेगा। प्रकृति भगवान्‌के आश्रित है, इसलिये तुम्हें प्रकृतिसे पिण्ड छुड़ाना है तो भगवान्‌के शरण हो जाओ।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता १८। ६२)

हे भारत! तू सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही शरणमें जा। उस परमात्माकी कृपासे ही तू परम शान्तिको तथा सनातन परम धामको प्राप्त होगा।

सब प्रकारकी शरण किस प्रकार हों? जो मैं कह गया वह सब प्रकारकी शरण है। आप कहें कि अभी सब प्रकारकी शरणका विषय कहना बाकी ही रहा क्या? हाँ, जबतक आप सुनेंगे मैं सुनाता रहूँगा, तबतक बाकी ही रहेगा, किन्तु आत्माके कल्याणके लिये तो एक बात आप धारण कर लें, उससे ही काम बन जायगा। फिर आप पूछें कि भगवान् सारे संसारके कल्याणके लिये सब प्रकार शरण होनेके लिये फिर क्यों कह रहे हैं, सारे संसारका कल्याण भी हो सकता है क्या? हाँ, भगवान्‌की कृपासे हो सकता है और भी मूल्यवान् बातें बतायी जाती हैं। थोड़ा-सा भी समझमें आ जाय तो बेड़ा पार है, बुद्धिके द्वारा धारण कर लेना ही समझना है। शब्द कोई फारसी, अंग्रेजी नहीं बोलूँगा, किन्तु समझकर धारण करना चाहिये।

आप कहें कि हम तो भगवान्‌के स्वरूपको समझते ही नहीं, हम ध्यान किस प्रकार करें? हम उनकी आज्ञाका पालन किस प्रकार करें? आप अपनी बुद्धिमें निश्चय कर लें कि परमात्मा हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, सर्वान्तर्यामी हैं केवल मान लेना है। यहाँ सरकार नहीं है, किन्तु उसकी सत्ताको मानते हो। कोई कहता है हम सरकारकी सत्ताको नहीं मानते तो सरकार हमें कान पकड़कर अपनी शक्ति मनवा देती है। सरकार तो यहाँ नहीं है, किन्तु हमारे भगवान् यहाँपर हैं। हम

यह मान लें कि भगवान् यहाँ हैं, यह भगवान्‌के एक अंशकी शरण है। हम इसपर डटे रहें तो भगवान् स्वयं आकर हमारे सामने खड़े हो जायँगे। भगवान् आपपर भारी-से-भारी आपत्ति डाल सकते हैं, आपको विचलित नहीं होना चाहिये। यदि आप विचलित हो जाते हैं तो आपको भगवान्‌पर विश्वास कहाँ है? आप आपत्ति पड़नेपर भजन, ध्यान और धर्मको छोड़ देते हैं। मैं समझता हूँ आपको ईश्वरपर भरोसा नहीं है। जिसको विश्वास होता है वह टस-से-मस नहीं होता। जो आदमी आपत्ति पड़नेपर फिसल जाता है, भगवान् समझते हैं यह मेरेपर निर्भर नहीं है।

जिसके यह निश्चय हो जायगा कि भगवान् सब जगह हैं, उसके द्वारा पाप नहीं होगा, हम कभी टस-से-मस नहीं होंगे, हम अत्याचारसे डरते हैं, दूसरी कार्यवाही करते हैं तो तुम ईश्वरपर निर्भर कहाँ हो? ईश्वरके रहते हुए क्या तुमपर कोई अत्याचार कर सकता है। अत्याचार शब्द कर्ताके लिये है, भोक्ताके लिये नहीं। कर्ता अहंकारके आश्रित होकर करता है, इसलिये उसके लिये कहा जाता है। भगवान् कहते हैं—

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥

(गीता १८। १७)

जिस पुरुषके अन्तःकरणमें 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि सांसारिक पदार्थोंमें और कर्मोंमें लिपायमान नहीं होती, वह पुरुष इन सब लोकोंको मारकर भी वास्तवमें न तो मारता है और न पापसे बँधता है।

उसका नाम फिर अत्याचार नहीं है। भोक्ताको समझना चाहिये कि तुमने कोई पाप किया था, उसका यह फल है।

प्रह्लादके हृदयमें यह विश्वास था कि भगवान्‌के राज्यमें कोई किसीपर अत्याचार कर ही नहीं सकता। प्रह्लादने इसको चरितार्थ करके दिखा दिया, कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता—

जाको राखे साइयाँ मार सके ना कोय।
बाल न बाँका कर सके जो जग बैरी होय॥

सारा विश्व एक ओर और तुम एक ओर, तुम निरपराधी हो तो किसीकी शक्ति नहीं कि तुम्हारे ऊपर कोई अत्याचार कर सके। आपके हृदयमें विश्वास हो तो इतना बल आपमें आ सकता है कि सारी त्रिलोकी एक ओर और आप एक ओर, सारी त्रिलोकी आपके सामने नष्ट हो सकती है। यमराजका दण्ड भी आपके सामने कोई चीज नहीं होगा। मार्कण्डेयजीने शिवजीकी मूर्ति अपने हाथसे पकड़ ली, स्वयं यमराज आते हैं बाँधनेके लिये, शिवजी साक्षात् प्रकट हो गये, त्रिशूल लेकर यमराजके सिरपर मारते हैं। यमराज विदा हो गये। भगवान्‌की शरण होनेपर तो यमराजके बापकी भी सामर्थ्य नहीं है, इन बातोंपर विश्वास करना चाहिये। उसे वही ठीक समझा जो आपत्ति पड़नेपर भी प्रह्लादकी तरह डटा रहे। भगवान् उसे प्रकट होकर दर्शन देते हैं, उसके निर्भयता, बल, तेज आ जाते हैं। भगवान् सब जगह हैं, उनके रहते अन्याय नहीं हो सकता। भगवान् हैं, सर्वसामर्थ्यवान् हैं, सब जगह हैं, जो उनके शरण हो जाता है, उसको कोई भय नहीं रहता। यह विश्वास आपको होना चाहिये, फिर भगवान् आपके सामने प्रकट हो जायँगे। यह निर्भरताका थोड़ा-सा अंश बताया है। भगवान्‌के शरण होनेका एक अंश भी आप धारण कर लें तो भगवान् आपके पास आये बिना रह ही नहीं सकते।

नारायण नारायण नारायण

महात्माओंकी विशेषता

महात्माओंमें सबसे बढ़कर लक्षण समता है। सात-पाँचकी आवश्यकता नहीं, समता सारे लक्षणोंका राजा है—

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥

(गीता १२। १८-१९)

जिसकी शत्रु-मित्रमें समबुद्धि है, मान-अपमानमें समबुद्धि है, शीत-उष्णमें समबुद्धि है, जो आसक्तिसे रहित है, निन्दा-स्तुतिमें सम है, ईश्वरकी कृपासे जो कुछ आकर प्राप्त हो जाता है उसमें संतोष है, रहनेके स्थानमें ममतासे रहित है। उपर्युक्त श्लोकोंमें भगवान्‌ने समताके अतिरिक्त अन्य बातें भी कही हैं, किन्तु निम्न श्लोकमें केवल समताकी ही बात कही है—

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

(गीता ५। १८)

वे ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मणमें तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें भी समदर्शी ही होते हैं।

यहाँ व्यवहारमें समता नहीं है, भावमें, ज्ञानमें, दृष्टिमें समता है। सुख-दुःखमें समता है, समताके विषयमें सम समझना है। इसलिये समदर्शी कहा, अन्यथा समवर्ती कह सकते थे। हाथीकी

प्रवचन-तिथि— ज्येष्ठ कृष्ण १२, संवत् २००१, शुक्रवार, दिनांक १६-५-१९४४, प्रातःकाल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

सवारीकी जाती है, कुत्ते और गायकी नहीं। दूधका काम पड़ता है तो गायका पीया जा सकता है, हाथी तथा कुत्तेका नहीं। खाने-पीनेका पदार्थ उनके अनुकूल ही दिया जा सकता है। मनुष्यको घास नहीं दिया जा सकता, कुत्ता भी घास नहीं खायगा। समदर्शनका अभिप्राय यही है कि उनमें समान भाव रखना चाहिये। जैसा अपने शरीरमें समभाव है। यह समभाव है, समबर्ताव नहीं है। व्यवहार तो सब अंगों सिर, हाथ, पैर आदिसे अलग-अलग होगा। पर सूई किसी भी अंगमें चुभाये, उसकी पीड़ामें समता है।

बर्ताव सारे शरीरकी रक्षाके लिये है। शास्त्रके अनुकूल बर्तना ही समता है। विषमता भी कहीं-कहीं समतासे ऊँची हो जाती है। कोई स्त्री अपने लड़कोंकी अपेक्षा अपनी देवरानी, जेठानीके लड़कोंको अधिक देती है, यह विषमता होते हुए भी इसका दर्जा समतासे ऊँचा है। सम व्यवहार उच्चकोटिकी चीज है, कसौटी है। समका मतलब है निर्विकार रहना। हर्ष, शोक न रहना, यदि होवे तो वह अज्ञानी है। दिन पूरा हो सकता है, किन्तु महात्माओंके लक्षण पूरे नहीं बताये जा सकते। इसलिये संक्षेपमें ही कहता हूँ। वैरी और मित्र दोनों न्याय कराने आयेंगे तो वह वैरीका पक्ष करेगा, यहाँ यही न्याय है, यही समता है। जिसके थोड़ा नुकसान लगाया जाय, वह उसकी सलाहसे लगाया जाय वह भी न्याय है।

महात्माओंका दूसरा लक्षण बताया जाता है—उनमें स्वार्थका त्याग होता है, हर एक काममें स्वार्थका त्याग होता है, सांसारिक पुरुषोंमें स्वार्थ होता है। सर्वथा स्वार्थका त्याग या तो महात्माओंमें होता है या ईश्वरमें ही होता है। तुलसीदासजी कहते हैं—

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम तुम्हार सेवक असुरारी॥

हे प्रभो! हेतुरहित बिना प्रयोजनके उपकार करनेवाले या तो आप ही हैं या आपके भक्त।

जो परमात्माके निकट पहुँच चुके हैं, ऐसे उच्चकोटिके साधक द्वारा भी ऐसा व्यवहार हो सकता है।

संसारी लोगोंके हृदयमें हर समय अपना स्वार्थ वास करता है, महात्माके हृदयमें हर समय दूसरेका हित वास करता है।

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

ऐसे लक्षण महात्मा पुरुषमें होते हैं और जो परमात्माके निकट पहुँच चुके हैं उनमें भी रहते हैं, वे भी महात्मा ही हैं।

गीतामें कहा है—

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥

(गीता १२। ४)

वे सम्पूर्ण भूतोंके हितमें रत और सबमें समान भाववाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं।

यह तो प्राप्तिके पूर्वकालकी बात है, अब उत्तरकालकी बात बतायी जाती है।

अब अपना कोई भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं है, तब उनकी जो भी क्रिया होगी संसारके कल्याणके लिये ही होगी, जिस प्रकार ईश्वरकी होती है। उनमें दूसरा लक्षण होता है स्वार्थका त्याग। रुपया, पैसा ही स्वार्थ नहीं है, मान, बड़ाई आदिकी इच्छा भी स्वार्थ ही है, यहाँतक कि मुक्तिकी इच्छा भी स्वार्थ है। परमात्माके जो अत्यन्त निकट पहुँच गये हैं, वे भी अपने स्वार्थकी सिद्धि दूसरोंसे नहीं चाहते।

एक धनी आदमी भिखारियोंकी लायी हुई भिक्षामेंसे क्या कुछ चाहता है। किसी मूर्ख धनीके यह इच्छा हो भी सकती है, किन्तु

परमात्माकी प्राप्तिके मार्गमें चलनेवाले पुरुषोंके यह इच्छा नहीं होती। अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं है, उच्चभाव नहीं है फिर वह धनी क्या कंगाल ही है। आपपर जिसका यह असर पड़े कि वह मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाकी इच्छा नहीं करता, उसे आप महात्मा समझें।

तीसरी बात यह है कि वह सारे भूतोंके हितमें रत रहता है। इससे दूसरोंके अनिष्टकी बात तो अपने-आप हट गयी और उसके हृदयका भाव हेतुरहित दया और प्रेमका रहता है। इसका नाम सुहृद् भाव है। सुहृदताका भाव है कि बिना कारण दया करना, यह बात भगवान् या उनके भक्तोंमें ही रहती है। भगवान्‌ने भक्तोंके लक्षण बताये हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥

(गीता १२। १३)

जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित, सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहंकारसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है।

जहाँ सुहृदता है वहाँ द्वेषभाव आ ही नहीं सकता। उसमें दयाका जो भाव है, प्रेमका भाव है, कोई अपराध भी कर दे तो उसका बदला वह नहीं चाहता। ज्ञानके सिद्धान्तसे तो इसीलिये बदला नहीं चाहता कि वह सबको अपनी आत्मा ही समझता है।

दाँतोंसे जीभ कट जाती है तो क्या हम पत्थरसे दाँतोंको तोड़ते हैं? तोड़ेंगे तो जीभके तो दर्द था ही, दाँतोंके और बढ़ेगा। वह सबको अपनी आत्मा समझता है। वह कैसे किसको मरवा सकता है, कैसे किसको मार सकता है। जो दूसरोंको मरवाता

है या मारता है समझना चाहिये उसे आत्माका ज्ञान नहीं है।

महात्माओंमें प्रेम, समता, क्षमा, दया रहती है। ये प्रधान-प्रधान गुण बताये हैं। उनमें अनन्त गुण रहते हैं। वर्तमानके स्वार्थी आदमियोंसे उनका व्यवहार उलटा होता है, उनका व्यवहार विलक्षण होता है, चमकता है। इसलिये उनके व्यवहारकी ओर दृष्टि चली जाती है, उनमें दैवी सम्पदाके भाव तो रहते ही हैं और भी उच्चकोटिके भाव आ जाते हैं, गुणातीत पुरुषोंके भाव भी आ जाते हैं। गीता २।५५—७२ तक तथा १२।१३—१९ तक तथा १४। २२—२६ तक महात्मा पुरुषोंके लक्षण देखने चाहिये। किन्तु जो लौकिक चमत्कार देखनेमें आयें, वह महात्माओंके लक्षण नहीं हैं, वह तो सांसारिक पुरुषोंको मोहमें डालनेवाली चीज है। चमत्कार देखकर मोहमें नहीं पड़ जाना चाहिये। सिद्धियाँ जिनमें होती हैं, वे सिद्ध कहलाते हैं, पर उनसे महात्माओंका दर्जा ऊँचा है। देवताओंसे भी महात्माका दर्जा ऊँचा है। महात्माओंमें स्वार्थकी गंध नहीं रहती। जबतक गन्ध है तबतक महात्मा नहीं है। मनके संकल्पकी सिद्धिवाले भी महात्मा नहीं हैं। यह तो यम-नियमके पालनसे ही हो जाते हैं। इनके होनेसे कोई महात्मा नहीं समझा जा सकता। सिद्धियाँ परमात्माकी प्राप्तिमें बाधक हैं। जिनके दर्शन, स्पर्श, भाषणसे ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, सद्गुण, सदाचारोंका असर पड़े तो समझना चाहिये कि ये महात्मा हैं। अन्धकारमें लालटेनका जिस प्रकार प्रभाव पड़ता है, उस तरह उनका प्रभाव होता है। उनकी उपस्थितिमें कामी पुरुषमें कामका भाव, लोभीमें लोभका भाव, क्रोधीमें क्रोधका भाव दब जाता है। श्रद्धासे प्रभाव होता है, बिना जाने भी कुछ प्रभाव तो होता ही है।

महात्माके पास किस उद्देश्यसे जाय। महात्माके पास बड़ा-से-बड़ा उद्देश्य लेकर जाना चाहिये। बड़े-से-बड़ा उद्देश्य है परमात्माकी प्राप्ति। परमात्माकी प्राप्ति वे ही पुरुष करा सकते हैं जिन्हें परमात्माकी प्राप्ति हो चुकी है। जिन्हें परमात्माकी प्राप्ति हो चुकी है वे ही महात्मा हैं। परमात्माकी प्राप्तिका भाव लेकर महात्मा पुरुषोंके पास जाना चाहिये। छोटा उद्देश्य लेकर उनके पास जाते हैं, उसकी सिद्धि हो जाती है तो हमारी पूँजी ही खर्च होती है। उनके पास सकामभाव लेकर क्या जाय। परमात्माकी प्राप्तिके उद्देश्यसे ही उनके पास जाना चाहिये।

गंगाके पास हम श्रद्धाको लेकर जाते हैं। इसी प्रकार महात्माके पास श्रद्धाको लेकर जाना चाहिये। महात्मा पुरुषसे सारे संसारका कल्याण हो सकता है। यह बात नहीं कि वे चाहते नहीं, हम चाहेंगे तो उनकी भी चाहना होगी। ऐसी शक्ति उनमें होते हुए भी हम लाभ नहीं उठा सकते। महात्मा पुरुषके पास जाते ही समझे कि अज्ञानका नाश होता जा रहा है। जितने विकार हैं उनका स्वाभाविक ही विनाश हो जाता है। जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे अन्धकारका नाश हो जाता है। उनके जैसे-जैसे निकट जाते हैं वैसे-वैसे गुणोंके पुंज हमारेमें प्रविष्ट हो रहे हैं। इस भावसे जाना चाहिये। जानेके बाद क्या करना चाहिये? अपनेसे बन सके तो उनकी सेवा करें, प्रणाम करें, सरलतासे कोई बातकी शंका हो तो पूछें। और क्या करें? वे जो कुछ कहें, उनकी बातोंके सुननेके परायण हो जाय, जैसे मृग वीणा सुननेके परायण हो जाता है। जो बात सुनी, उसे धारण करनेकी चेष्टा करे। समझे, यह तो स्वाभाविक हमारे धारण हो जायगी। इसमें क्या कठिन बात है। वहाँ जाकर नेत्रोंसे उनका दर्शन कर ऐसा

समझे कि वे गुणोंके पुंज हैं, उनके जो आचरण देख रहे हैं, नेत्रोंसे उनका चित्र अंकित करें। उनकी हर एक चेष्टामें हम गुण बुद्धि करें, उनकी हर एक चेष्टामें न्याय देखें। देख-देखकर हम मुग्ध हों। नेत्रोंसे दर्शनका, हाथोंसे सेवाका, मस्तकसे प्रणामका लाभ लें। मनसे उनमें जो उत्तम भाव हैं, उनको अपने हृदयमें धारण करें।

सत्संग छूट जाय तो घरपर आकर जिस प्रकारका लाभ वहाँ उठा रहे थे उसी प्रकारका लाभ घरपर आकर उठावे। श्रद्धासे लाभ उठाया जा सकता है। तुलसीदासजी जब थे तब लोगोंने जो लाभ उठाया, उनकी अपेक्षा आज जिनकी श्रद्धा ज्यादा है, उन्होंने ज्यादा लाभ उठाया। तुलसीदासजीका शरीर नहीं है, उनकी जीवनी, उनके गुण, आचरण, उनके लेख, पुस्तकें आदि देखकर हम लाभ उठा सकते हैं। इसी प्रकार महात्मा पुरुष हैं, उनके जो भाव हैं, गुण, आचरण हमने देखे हैं, घरपर जाकर एकान्तमें विचार करके, लक्ष्य करके, उनकी पुस्तक—लेख आदिसे लाभ उठावें। उनसे वही लाभ उठाया जा सकता है जो उनके संगसे उठाया जा सकता है। उदाहरण आपको तुलसीदासजीका बताया है। श्रद्धासे लाभ उठाया जा सकता है।

नारायण नारायण नारायण

वैराग्य और उपरतिकी महिमा

भगवान्‌के नामजपका अभ्यास, स्वरूपका अभ्यास, प्राणायामका अभ्यास—इस प्रकारके अभ्याससे वैराग्य होता है। वैराग्यसे अभ्यासका परस्पर सम्बन्ध है। जब तीव्र अभ्यास हो जाता है, तब परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र हो जाती है। तीव्र वैराग्यसे भी शीघ्र समाधि हो जाती है। वैराग्य होनेसे किसी प्रकारकी कामना, तृष्णा नहीं रहती। हमलोगोंपर प्रभुकी बड़ी कृपा है जो इस स्थानपर आये। यहाँ तो स्वतः ही वैराग्य होता है, इसीलिये ऋषिलोग वनमें रहा करते थे। हमलोग वनमें प्रवेश करें, वहाँ वृक्ष-ही-वृक्ष हैं, बिना व्याख्यानके ही वैराग्य उत्पन्न होता है। आपलोग विवाहमें जाते हैं तो पलंगोंपर, गलीचोंपर सोते, बैठते हैं, यहाँ बैठनेके लिये रेणुका है। श्रृंगार यहाँ कायम नहीं रहता, कारण धूल उड़ती है, यहाँ तो लोग आते ही हैं वैराग्यके लिये। वैराग्यकी बात कहनेके लिये कहा गया, जो बाहर-भीतरसे वैराग्यवान् हो, उसके द्वारा वैराग्यकी बात कही जाय तो ठीक है। ऐसा पुरुष वैराग्यकी बात कहे तो सम्भव है वेश्याके भी वैराग्य हो जाय। राजा-महाराजा कोई भी आओ, धूलमें बैठो, यह क्या वैराग्यकी बात नहीं है। यहाँ चाहे जहाँ बैठो, सब जगह धूल ही बिछी है और जब ऊपरसे धूल उड़कर गिरे तो और वैराग्य हो। नीचे धूल और ऊपर धूल, फिर वैराग्य-ही-वैराग्य खिलता है। वैराग्यसे उपरामता होती है। वैराग्य एक अद्‌भुत चीज है। जब चित्तमें वैराग्य होता है तो त्रिलोकीका ऐश्वर्य धूलके समान प्रतीत होने लगता है। बल्कि धूलके जितनी भी

प्रवचन-तिथि—ज्येष्ठ कृष्ण १२, संवत् २००१, दिनांक १६-५-१९४४, दोपहर, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

इज्जत ऐश्वर्यकी नहीं होती। वैराग्यवान् पुरुष जब घूमता है तो वैराग्यकी बाढ़ आ जाती है। कोई कस्तूरी लेकर चलता है तो उसकी गन्ध फैल जाती है। वैराग्यवान् पुरुष जिस मार्गसे चलता है उस मार्गमें वैराग्यके परमाणु फैलाता चलता है। उसके दर्शनसे वैराग्य होता है। वैराग्यके नशेमें जब मनुष्य विचरता है तो स्वतः ही उपरति हो जाती है। उसके संसारकी फुरणा नहीं होती। प्रयत्न करनेपर भी संसारके चित्र उसके सामने नहीं आते। संसारके भोगोंमें जो अरुचि पैदा होती है इसीका नाम वैराग्य है और वृत्तियाँ जब हट जाती हैं उसका नाम उपरति है। वैराग्यकी बात आरम्भ करके साथमें उपरति रखते हुए महात्मा पुरुषोंके दृष्टान्त आपको बताते हैं। एक बार शुकदेवजी महाराज जा रहे थे, पीछे-पीछे वेदव्यासजी महाराज जा रहे थे। आगे गये तो एक जलाशयपर स्त्रियाँ स्नान कर रही थीं, शुकदेवजी चले गये। स्त्रियाँ उसी प्रकार स्नान करती रहीं। पीछे वेदव्यासजी आये। उन्हें देखकर स्त्रियाँ लज्जा करने लगीं, वेदव्यासजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा कि मेरा जवान पुत्र इधरसे निकला तब तो तुमने लज्जा नहीं की, मैं बूढ़ा हूँ, मेरेसे लज्जा क्यों की? स्त्रियोंने कहा आपके भी वैराग्य है, आपके पुत्रके भी वैराग्य है, किन्तु उनके वैराग्यके साथ उपरति है। उन्हें यह भी ज्ञान नहीं कि स्त्री क्या है? पशु क्या है? परन्तु आपको यह ज्ञान है कि ये स्त्रियाँ हैं। आपको ज्ञान है, इसलिये हम आपकी लज्जा करती हैं। यहाँ यह बात दिखायी गयी कि वेदव्यासजीके वैराग्य है एवं शुकदेवजीके वैराग्यके साथ-साथ उपरति है। त्रिलोकीके ऐश्वर्यमें आसक्ति नहीं उसका नाम वैराग्य है। संसारका चित्र प्रयत्न करनेपर भी न आये इसका नाम उपरति है। वैराग्यमें बड़ा भारी आनन्द है। हमें खान-पान, ऐश आराममें जो सुख मिलता है,

उससे करोड़ों गुना अधिक सुख वैराग्यमें है। संसारके भोगोंमें जो सुख मिलता है यह अल्प है, परिणाममें दुःखरूप है। वैराग्यवान् पुरुष इससे नाक सिकोड़ते हैं, वैराग्यका सुख बड़ा भारी अद्भुत है। आप समझ लीजिये जैसे कोई शौकीन बाबू इत्र लगाता है, लवेण्डर लगाता है, किन्तु वैराग्यवान् पुरुषकी दृष्टिमें पेशाबकी तरह उसका आदर है। उसपर कोई गुलाबजल, लवेण्डर डाले तो उसे मालूम पड़े कि पेशाब डाल रहा है। उसपर कोई डाल भी दे तो जबतक वह स्नान नहीं कर लेता, उसे मालूम पड़ता है कि पेशाब डाला हुआ है। वह ऐसी जगह जाता ही नहीं है। उसको सारा संसार संकल्पमात्र ही प्रतीत होता है। वैराग्य अवस्थामें त्रिलोकीका ऐश्वर्य काकविष्ठाके समान दीखता है, जब उपरति हो जाती है तब संसार कोई चीज है ही नहीं।

दधीचि ऋषि ध्यानमें मस्त हैं। इन्द्र आकर बैठ जाता है। ध्यान खुला तब पूछा किस प्रयोजनसे आना हुआ। इन्द्रने कहा आप जिस आनन्दमें स्थित हैं, इसका मुझे भी उपदेश कीजिये। दधीचिने कहा तू उसका अधिकारी नहीं है। तुम इन्द्रासनपर जिस सुखका अनुभव करते हो, वह सुख तो एक कुत्ता भी अनुभव करता है। तुम्हारे और उसके सुखमें कोई अन्तर नहीं है। सांसारिक सुखमें ही जो रमे हुए हैं वे तो गये बीते हैं। यह सुख तो कुत्ते और गधेमें ही देख लो। भोगोंमें टट्टी, पेशाबके सिवाय और चीज है ही क्या। शुकदेवजी महाराज जिस आनन्दमें मस्त थे, वह तो अद्भुत और अलौकिक आनन्द था। राजा परीक्षित्‌को जब शाप हो गया था, बड़े-बड़े ऋषि लोग इकट्ठे हुए। दैवसंयोगसे शुकदेवजी भी वहाँ पहुँच गये। वे जब रास्तेमें जा रहे हैं लड़कोंने समझा यह पागल है, कोई कूड़ा डालता है, कोई पत्थर डालता है, कोई धूल डालता है। वे मस्त हुए जा

रहे हैं। जब सभामें पहुँचे तो सब-के-सब उन्हें देखकर खड़े हो गये। राजा परीक्षित्‌ने देखा क्या बात है, कौन आये? सब सत्कार करने लगे। शुकदेवजीके लिये तो जैसा ही कूड़ा करकट है, वैसा ही सत्कार। राजा परीक्षित्‌ने पूछा यह क्या बात है? ये तो छोटी आयुके हैं, आप सब लोग खड़े क्यों हो गये? ऋषियोंने कहा यह अवस्थामें तो बड़े नहीं हैं पर गुणोंमें श्रेष्ठ हैं। इसलिये हम गुणोंकी पूजा सत्कार करते हैं। सब लोग बैठ गये। सबने कहा राजा परीक्षित्! ये आपका कल्याण करने स्वतः ही आ गये हैं। आपके ऊपर ईश्वरकी बड़ी कृपा है।

हमलोगोंपर भी ईश्वरकी बड़ी कृपा है, जो हमलोग इस गंगाके किनारे आ गये हैं। साधुओंकी तरह यहाँ जीवन बिताये। भोजन भी साधारण करे। ईश्वरकी बड़ी कृपा है जो सादगीसे जीवन बीतता है। ऋषियोंका सारा जीवन इस प्रकार बीतता था। हमलोग भी इसी तरह बराबर जीवन बितावें तो मैं तो समझता हूँ कि ऋषियोंसे बढ़कर हमारा जीवन हो सकता है। ईश्वरकी हमपर बड़ी कृपा है, ऐसी स्थितिमें वैराग्य उपरति होनी ही चाहिये। शुकदेवजीने कथा सुनाकर सात दिनमें राजा परीक्षित्‌का उद्धार कर दिया। अपने यहाँ तो दो-तीन महीने कथा व्याख्यान चलता ही है। एक समय शुकदेवजी महाराज वैराग्यके नशेमें एवं परमात्माके ध्यानमें भी मस्त थे, पिताजीके पास आये, कहा— मुझे उपदेश दीजिये। मैं साधन करता हूँ, किन्तु मुझे पूर्ण शान्ति नहीं मिलती। पिताजीने कहा—बेटा! एक परमात्माके सिवाय कोई वस्तु नहीं है। इसलिये उस परमात्माके ध्यानमें ही स्थित होना चाहिये। शुकदेवजीने कहा—आपने जो बात कही है, वह तो मैं जानता हूँ। यह बात मेरे अनुभवमें है। श्रीवेदव्यासजीने उन्हें राजा जनकके पास भेजा। राजा जनकके यहाँ गये, द्वारपालोंने

सूचना दी। राजा जनकने कहा खड़ा रहने दो। सात दिनतक शुकदेवजी खड़े रहे। सात दिन बाद राजा जनकने द्वारपालोंसे पूछा—शुकदेव खड़े हैं या चले गये? द्वारपालोंने कहा—वहीं खड़े हैं। सात दिनतक न खाना, न पीना, न सोना, स्थितिमें कोई विकार नहीं है। राजा जनकने बुलाया, उनके स्नानके लिये युवती स्त्रियोंको भेज दिया। स्त्रियाँ स्नान आदि कराने लगीं। उन्हें पता ही नहीं है कि स्त्रियाँ हैं। मुर्दे-जैसा स्वाँग है। जँचे जैसा करो। स्त्रियोंसे राजा जनकने पूछा कि इनके आसक्ति है या नहीं। स्त्रियोंने कहा—जैसे मुर्दा वैसा ये। चाहे कपड़ा बदलो या स्नान कराओ। इतनी उपरति और वैराग्य तो हमने देखा ही नहीं। तब राजा जनकने बुलाया और पूछा—आप किसलिये आये हैं? शुकदेवजीने कहा—मुझे उपदेश दीजिये। राजा जनकने कहा—आपको मैं क्या उपदेश दूँ, आप तो अन्तिम परिणाममें स्थित हैं। आप मेरेसे श्रेष्ठ हैं। आपके बाहर-भीतरसे वैराग्य है। आपके कमी इतनी ही है कि आप इस खोजमें हैं कि इससे बढ़कर कोई चीज हो, वह मैं प्राप्त करूँ, परन्तु इससे बढ़कर कोई बात नहीं है। आप एकान्तमें जाकर ध्यान करिये। उन्होंने ऐसा ही किया और समाधि लग गयी। शुकदेवजी महाराजकी कथा पढ़नेसे वैराग्य होता है, वे अच्छे महापुरुष थे। इसी प्रकार जडभरतकी कथा आती है। वे पूर्व जन्ममें राजाके पुत्र थे। सब छोड़कर वनमें तपस्या की, इसलिये इनका नाम भरत था। मरते समय मृगका चिन्तन करते हुए मरे, अतः दूसरा जन्म मृगका मिला। उन्हें पूर्व जन्मका ज्ञान रहा, इसलिये वे सूखे पत्ते खाते थे, थोड़े दिनोंमें शरीर सूखकर गिर गया तो एक ब्राह्मणके यहाँ जन्म हुआ। उन्हें पहले दोनों जन्मोंका ज्ञान था। उन्होंने सोचा कि मृगका संग करनेसे मृग बना, अब ईश्वरकी दयासे मनुष्यका

शरीर मिला है, इसलिये वे किसीमें आसक्त नहीं होते, जड़की तरह रहते। घरवालोंने इनका नाम जडभरत रखा। गुरुके यहाँ पढ़ने भेजा। दस अक्षर भी याद नहीं हुए, गुरुने जवाब दे दिया। भाइयोंने खेतपर रखा। वहाँ जमीनको बराबर करनेके कामके लिये कहा। उन्होंने जहाँ गड्ढा था, वहाँ पहाड़ कर दिया, जहाँ ऊँचा था वहाँ गड्ढा कर दिया, उलटा कर दिया। घरवालोंने सोचा कि यह किसी कामका नहीं है। भाइयोंने उसे खेतपर बैठा दिया। एक दिन वह बैठा था। दस्युराजने देवीको मनुष्यकी बलि बोल रखी थी। उसके लुटेरोंने उनको खेतमें बैठा देखा, पकड़कर ले गये, उसकी पूजा की। फिर देवीके मण्डपमें ले गये। गर्दन काटनेकी तैयारी है, जडभरत मस्त हैं। तलवार सिरपर झुकाई, मूर्तिमेंसे देवी प्रकट हो गयीं। दस्युराज तथा सिर काटनेवालोंका सिर काट डाला। देवीने जडभरतसे कहा कि आज ये लोग तुम्हें काट डालते तो मैं कहाँ मुँह दिखाती। तुम्हारी ऐसी स्थिति देखकर मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो वह वर माँगो। जडभरतने कहा—मेरे तो इच्छा नहीं है। देवीने कहा—मेरे सन्तोषके लिये माँगो। तब उन्होंने कहा इन सबको जीवित कर दें। बादमें उन्होंने राजाको उपदेश दिया। जडभरतके कितनी उपरति थी और परमात्माका ध्यान तो था ही। संसारमें ऐसे-ऐसे महापुरुष हो गये हैं, जिनमें उपरति और वैराग्यकी सीमा नहीं।

परमात्माका नाम है आनन्दमय, आनन्दघन। सारा संसार आनन्दसे उत्पन्न, आनन्दमें स्थित एवं आनन्दमें ही विलीन होता है। आनन्द परमात्माका वाचक है। यह बड़ा अच्छा ध्यान है साधनकालमें भी आनन्द है, आनन्दके अतिरिक्त कोई वस्तु है ही नहीं। परमात्मा आनन्द रूपसे हमारे चारों ओर व्याप्त हैं, हमारे रोम-रोममें आनन्द-ही-आनन्द परिपूर्ण हो रहा है।

बादलके बाहर भी आकाश एवं भीतर भी आकाश है, अणु-अणुमें आकाश परिपूर्ण है। इसी प्रकार हमारे बाहर-भीतर चारों ओर परमात्मा परिपूर्ण है। हम चलें तो इस प्रकार चलें कि हमारे चारों ओर आनन्द-ही-आनन्द परिपूर्ण है। ऐसा अभ्यास करें कि मैं आनन्दमें मग्न हूँ। उस आनन्दमय परमात्माके संकल्पमें मेरा शरीर है, वह आनन्दमय परमात्मा मेरे बाहर-भीतर परिपूर्ण है। मैं उस परमात्माका ध्यान कर रहा हूँ और वे मेरा ध्यान कर रहे हैं। सारे संसारका संकल्प तो उन परमात्माने छोड़ दिया, केवल मात्र मेरा शरीर ही उनके संकल्पमें रह गया है। क्यों रह गया? क्योंकि मैं उनका ध्यान कर रहा हूँ। उनकी प्रतिज्ञा है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

(गीता ४। ११)

हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ।

इसके सिवाय और कुछ नहीं करना है। हर समय ध्यान करनेसे हर समय आनन्द रहता है। भगवान् कहते हैं जो मुझे सर्वत्र देखता है, उसके लिये मैं कभी अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। आप ऐसे आनन्दको प्राप्त हो जायँगे कि आपके शरीरको कोई काट भी डाले तो आप इससे विचलित नहीं होंगे। इसलिये हमें उस आनन्दमयका ध्यान करना चाहिये। जब हम उस आनन्दको नहीं छोड़ेंगे तो वह आनन्द हमें नहीं छोड़ेगा। कैसा सुगम साधन है। करना कुछ नहीं, केवल आनन्दका ध्यान करते रहो। मनसे आनन्दका ध्यान, वाणीसे आनन्दका जप, हर समय आनन्दमें मग्न रहे तो दुःख, चिन्ता, शोक हमारे पास नहीं आ सकते। इसलिये उस आनन्दमय परमात्माका ध्यान करना चाहिये।

मान-बड़ाईसे बचो

संसारमें ठोस चीज कम है। कोई ठीक मार्गपर हो तो लोग उसे मान-बड़ाई देकर गिरा देते हैं। एक राजा था, उसे परमात्माकी प्राप्ति हो गयी। उसने यह जाननेके लिये कि मेरे राज्यमें कोई परमात्माको प्राप्त पुरुष है या नहीं, राज्यमें ढिंढोरा पिटवाया कि किसीको अमूल्य वस्तु मिल जाय तो क्या करे। सबने अलग-अलग बात बतायी। एक चना बेचनेवाला था। उसने कहा मूल्यवान् चीज मिली है तो हल्ला क्यों मचाते हो। राजाको उसका उत्तर ठीक लगा, उसे लगा कि यह परमात्माको प्राप्त पुरुष है। उससे मिलनेकी राजाके मनमें आयी तो लोगोंने कहा इनको यहीं बुला दें। राजाने कहा—इनको हम नहीं बुला सकते। हम इनके पास जायँगे। राजा स्वयं उसके पास गये। उनको पता चला कि राजा आये हैं तो एक चटाई बिछा दी, सत्संगकी बातचीत होने लगी। राजाने कहा कोई चीजकी आवश्यकता हो तो बोलिये। उन्होंने कहा कुछ आवश्यकता नहीं। राजाने कहा—मेरे सन्तोषके लिये कुछ माँग लें। तब उन्होंने कहा—वचन दीजिये। राजाने कहा ठीक है। उन्होंने कहा—आप मेरे पास मत आइये और मेरेको मत बुलाइये। राजाने कहा—आपने मना क्यों किया। उसने कहा—आप यहाँ आयेंगे तो लोगोंको मालूम हो जायगा। राजाजी इनके पास आते हैं। यह जानकर लोग सिफारिश लेकर आयेंगे।

प्रवचन-तिथि—ज्येष्ठ कृष्ण १३, शनिवार, संवत् २००१, दिनांक १७-५-१९४४, सायंकाल, टीबड़ी, स्वर्गाश्रम।

व्यर्थ राग-द्वेष बढ़ जायगा। फिर आपको आवश्यकता भी क्या है? सत्संगकी बात करके राजाजी चले गये।

अपनेमें वैराग्य और उपरति बढ़ाओ। संसारका जितना आधार है, वह कच्चा है। ब्याजका आसरा कच्चा है। मूल धनका आसरा कच्चा है, बेटोंका आसरा कच्चा है। ये तो धोखा देनेवाली चीजें हैं। इनके आसरेपर जो साधन करेगा, उसे तो रोना ही पड़ेगा। हनुमान गोयन्दकाने कहा था कि पाँच हजार रुपये पैदा हो जायँ तो भगवान्‌की प्राप्ति हो ही जाय। मैंने कहा यह तो झूठा आसरा है, तू भोला है।

नारायण नारायण नारायण

साधनकी अनुभूत बातें

भगवान्‌के नामका जप इसलिये निरन्तर करना है ताकि उनकी स्मृति सदा बनी रहे। संसारके विषयमें तो यही बात रखनी कि एक बार देख ली, फिर क्या आवश्यकता है। परमात्मविषयक बात तो नित्य अभ्यास करनेकी है। श्रीस्वामीजी अठारह अध्याय गीता जानते ही हैं, फिर नित्य पाठ करनेकी क्या आवश्यकता है, परन्तु उसकी नित्य अभ्यास करनेकी आवश्यकता है।

जितनी उपरामता है उतनी ही मूल्यवान् है। जितनी उपरामता तोड़ना है उतना ही पतन है। दूसरा आकर उपरामता तोड़े वह विघ्न है। दिन थोड़े रह गये हैं अब जोरसे काम चलाओ। जोरसे कैसे? एक तो मौन रखनेकी चेष्टा करें। परमात्माके विषयके अतिरिक्त दूसरी बात न करें। स्त्रियोंमें यह ज्यादा दोष है। सत्संगमें बाधा नहीं दें, आपसमें बात न करें। माला फेरें, अवकाश ही नहीं दें। बड़े लाभकी बात है। वाणीका तो ऐसा मौन रखे कि काम फँस जाय, तभी बोले।

पेटका ऐसा संयम रखे, मरनेके डरसे ही खाय। कानका ऐसा संयम रखे कि भगवत्‌विषयक बात ही सुने, अन्यथा उठकर चल दे। भगवत्‌विषयकके अतिरिक्त दूसरी बात सुनना विघ्न है।

मन भगवान्‌के सिवाय दूसरा चिन्तन करे तो झट उसे सँभाले, कहे—मूर्ख! तू घरमें घाटा क्यों लगाता है।

नेत्रोंसे परस्त्रीको न देखे, नेत्र बन्द कर ले। कहे कि सूरदासजीने तो आँख फोड़ दी थी, मैं तुम्हारा मुलाहिजा रखता

प्रवचन-तिथि—ज्येष्ठ कृष्ण १४, रविवार, संवत् २००१, दिनांक १८-५-१९४४, प्रात:काल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

हूँ। वाणीका एक नम्बर संयम तो यह है सत्य प्रिय बोलना, परन्तु अपने लिये एक नम्बर मौन रहना है।

मन, इन्द्रियोंपर आपका नियंत्रण नहीं है, इसलिये आपलोग हानि उठा रहे हैं, मेरा तो अनुभव है। मेरे अनुभवसे इतना लाभ तो उठाओ। संयम करके बाहरसे विषयोंसे हटाकर अन्तर्मुखी वृत्ति करनी चाहिये। नींद, आलस्यमें समय न बितावें।

कानोंसे भगवान्का गुणानुवाद, मनसे परमात्माका ध्यान, वाणीसे भगवान्के नाम-गुणोंका उच्चारण करें, अन्यथा इन्द्रियाँ धोखेबाज हैं। संसारमें आप विचर रहे हैं, यह इन्द्रियोंकी ही कृपा है। ये आपकी शत्रु हैं। जिसकी इन्द्रियाँ, मन वशमें हैं, वे ही मित्र हैं। जिसकी बुद्धि शुद्ध है, मन वशमें है, इन्द्रियाँ वशमें हैं, उसके लिये ये परम मित्रके समान हैं। जिसके वशमें नहीं हैं, उसके लिये ये ही शत्रु हैं। इन्हें समझाना चाहिये कि आजतक तुमने मेरे साथ बहुत ही पतनका व्यवहार किया है, तुम्हें मार डालना चाहिये। किन्तु मुलाहिजा रखकर छोड़ते हैं। अब तू तंग मत कर, अधीन होकर रह, नहीं जो जानसे मरेगा। व्यक्तिको मृत्यु दीखती है तो वह सुधार कर लेता है। मन, इन्द्रियोंको धमकी देनेसे यह नियंत्रणमें रहना स्वीकार कर लेते हैं। फाँसीका आदेश हो तो कैद स्वीकार कर ले। जानसे मार डालना यह है कि परमात्माकी प्राप्ति हो जाय तो मन मर जाय। लड़का चुपचाप बैठा रहे तो यहाँसे हटानेकी आवश्यकता नहीं है। चूँ-चपड़ नहीं करे तो कोई आपत्ति नहीं है। मन अपने अधीन होकर पड़ा रहे तो पड़ा रहे, किन्तु कभी कहीं, कभी कहीं भागे तो विक्षेप है। यह तो संयमकी बात है।

दूसरी बात है साधनकी, तुम्हारा साधन बहुत ढीला है। इसके लिये कटिबद्ध होकर चेष्टा करनी चाहिये। शरीरके शत्रु

बन जाओ। लाठी लेकर खड़े हो जाओ। इसे आराम मत दो। गधेकी तरह काम लो। मुझे देखो मैं पाँच मिनट भी शरीरको आराम नहीं लेने देता। इससे तो अधिक काम लिया जाय वही ठीक है। भाड़ा तो लग गया, बैलकी तरह खटाये। काम कम करे तो लूखी रोटी दे। साधन करके दिखा तो पूरी रोटी दूँगा, अन्यथा उपवास कराऊँगा। उपवास करनेका तात्पर्य यही है कि अधिक भोजन करनेसे अधिक नींद आती है। मैंने तो यह सब बात देखी है। यह कह दिया कि सूर्योदयके समय सोते रहोगे तो भोजन नहीं मिलेगा, अब भूल होती ही नहीं है। मिश्रीनाथजी साधू थे, बड़े संयमी थे। चीनी और घी उनके खूब हजम होता, किन्तु उन्होंने यह तय कर रखा था कि इस शरीरको चीनी, घी नहीं देना है। लूखी रोटी देना है, कभी-कभी मीठेकी ओर ध्यान चला जाता तो दो छुहारा माँग लाते। पूरे महीना ही लूखी रोटी खाते। कभी कहते आज इससे करार कर लिया है कि थोड़ी चिटकी देंगे। इतना संयम रखते। आजकल तो दूध नहीं मिले तो लोग व्याकुल हो जाते हैं। अपने तो दूध, घीसे इसे सींचते हैं, तब यह क्या निहाल करेगा। माल खिला-खिलाकर इस नौकरको खराब कर दिया। यह शरीर तो मजदूर है, खूब कसकर काम लो। यदि खूब काम दे तो थोड़ा भाड़ा भी दे दो, एक गिलास दूध दे दो। इसे भूखे नहीं मरना पड़ता, यह खूब सयाना है। शरीरसे खूब कसकर काम लो, काम भी मूल्यवान् लो। आज जो लिया कल उससे भी मूल्यवान् लो। मार्गमें चलना हो तो संयमसे चले। एक धनुषकी दूरतक देखकर अंधेकी तरह चले, अर्थात् प्रयोजन जितना देखे। व्यवहारसे तो इन्द्रियोंका संयम रखे, इन्हें परमार्थमें लगावे। आलस्य, प्रमाद एवं पापमें मनुष्यका समय अधिक लगता है,

तीनों ही नरकमें ले जानेवाले हैं। भोग भी नरकको देनेवाला है। चार बातका नियम ले ले। पाँच-छः घंटे सोनेके बाद निद्रा आलस्यको पास नहीं आने दे। दो बार भोजन करे। इसके सिवाय नाम ही नहीं ले। पाप-प्रमादको इस्तीफा दे दे। भोगको दो बार खावे जितना रख लो। आलस्यको छः घंटे सोना जितना रख लो। भोजन दवाईकी तरह करो, वह तो शरीर-निर्वाहके लिये है। स्वादबुद्धिसे भोजन करना विषके समान है। शौकीनीकी दृष्टिसे वस्त्र धारण करना खतरेकी चीज है। मनुष्य औषधिका सेवन करता है, क्यों? रोग मिटानेके लिये, इसी दृष्टिसे भोजन करे। सात्त्विक वस्त्र पहने। थोड़ेमें काम चल जाय उसका नाम ही निर्वाह है। यह सब तो संयमकी बात है। फिर साधनकी बात बतलाता हूँ। ऊँचे-से-ऊँचा साधन परमात्माका भजन-ध्यान है। परोपकार भी अच्छी बात है, किन्तु वह दो नम्बर है।

उपकारका काम भी एक नम्बर हो सकता है, जिसकी सेवा करे उसे भगवान् ही समझे। गौओंके मुखमें ग्रास देते समय, ब्राह्मणको भोजन कराते समय वहाँ भगवान्‌को ही देखे। एक व्यक्ति तो परमात्माकी सेवा करे एवं एक व्यक्ति इस प्रकार परमात्मविषयक बुद्धिसे सेवा करे तो परमात्माकी सेवासे मेरी समझमें यह मूल्यवान् है। उच्चकोटिकी निष्काम सेवा है। किन्तु यह नहीं हो तो दो नम्बरकी है। फल और आसक्तिको त्यागकर सेवा करे। यदि यज्ञ, दान, तप और सेवा स्वार्थ-बुद्धिसे करो तो जिस प्रकार व्यापार करते हैं, उसी तरह यह भी व्यापार है। इतना ही अंतर है। एक लोहेकी बेड़ी है और एक सोनेकी बेड़ी है। व्यापार लोहेकी बेड़ी है। सकामभावसे यज्ञ, दान, तप आदि करना सोनेकी बेड़ी है। आखिर तो कैद ही है। कैदसे निकलनेका

उपाय है फल और आसक्तिको त्यागकर कर्म करना।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः॥

(गीता ४। २०)

जो पुरुष समस्त कर्मोंमें और उनके फलमें आसक्तिका सर्वथा त्याग करके संसारके आश्रयसे रहित हो गया है और परमात्मामें नित्यतृप्त है, वह कर्मोंमें भलीभाँति बर्तता हुआ भी वास्तवमें कुछ भी नहीं करता।

असली चीज तो वही है कि सबको भगवान् समझकर सेवा करे।

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

यह तो भगवत् अर्पण कर्म ही है, यह भजन, ध्यानसे कम दर्जेका नहीं है।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता ९। २७)

हे अर्जुन! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान देता है और जो तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर।

इसका फल क्या होगा?

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥

(गीता ९। २८)

इस प्रकार, जिसके समस्त कर्म मुझ भगवान्के अर्पण होते हैं—ऐसे संन्यासयोगसे युक्त चित्तवाला तू शुभाशुभ फलरूप कर्मबन्धनसे मुक्त हो जायगा और उनसे मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त होगा।

भगवान्‌की स्मृति उसके हर समय है, यदि भगवान्‌की स्मृति नहीं है तो वह भगवत् अर्थ कर्म नहीं है।

भगवत् अर्पण कर्म वह है, जिसमें सबमें भगवत्-बुद्धि करके सबकी सेवा की जाय।

भगवत् अर्थ कर्म और भगवत् अर्पण कर्म भगवान्‌की भक्तिका ही अंग है। किन्तु भगवान्‌का सम्बन्ध न हो तो वह दो नम्बर है। और वह तो सोनेकी बेड़ी है, जिसमें फल और आसक्ति भी है।

जहाँ-जहाँ भगवत् अर्पण, भगवत् अर्थ शब्द गीतामें दिया है, वहाँ-वहाँ परम शान्तिकी प्राप्ति आदि शब्द आते हैं।

जहाँ केवल फल आसक्तिका त्याग है, भगवान्‌का सम्बन्ध नहीं है, वहाँ इतना ही कहा है कि कर्मोंसे छूट जायगा। एक-दो जगह ऐसा कहा है कि शान्तिको प्राप्त हो जायगा, किन्तु जोरदार बात नहीं आती।

एक बात यह है कि महात्मा और भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़ना चाहिये। उसमें सिवाय लाभके हानि नहीं है। भगवान्‌से रात-दिन सम्बन्ध जोड़ना चाहिये। साधन जो कर रहे हो उसे तेज करना चाहिये। जिस दिन तेज साधन न हो तो नियम कर लो कि एक समय भूखे रहेंगे तो स्वतः ही साधन तेज होगा। आप कहें कि यह काम तो कड़ा है, कड़ा करनेसे ही रास्ता बैठेगा। जो एक समय ही भोजन करते हैं, जैसे स्वामीजी, उनके लिये यह लागू नहीं है। वह तो एक फलका भले ही कम कर दें। व्रत कई प्रकारके होते हैं—

बीस अतिथि आ गये, सबको भोजन करा दे। बचा हुआ भोजन कम हो तो कम खा ले, यह एकादशीसे ज्यादा महत्त्वका है, और बिलकुल उपवास करना पड़े तो उस उपवाससे जितनी शान्ति मिलेगी, उतनी एकादशीसे नहीं मिलेगी। शिलोंछवृत्तिवाले ब्राह्मणने

एक दिनका उपवास किया, उस एक दिनके उपवासके बराबर सौ वर्षकी एकादशी नहीं हो सकती, किन्तु वह मौका तो मिलना ही कठिन है। मौकेकी बात है, एक मुट्ठी अन्न बाँटनेका इतना लाभ हो जाय जो लाभ रोटी बाँटनेका न हो। एकनाथजी महाराजने गंगोत्रीका जल गधेको पिलाकर शिवजीका दर्शन किया। गधेको जल पिलानेसे क्या शिवजीका दर्शन होता है? होता हो तो प्याऊ लगाओ, किन्तु वहाँ उस गधेके प्राण जा रहे थे। प्राण बचानेके लिये किसीकी सेवा करना बहुत मूल्यवान् है।

बंगालमें अभी कई आदमियोंके भूखके मारे प्राण जाते हैं, वहाँ सेवा करे तो बहुत लाभ है, परन्तु है खांडेकी धार। एक तो वहाँ बमका गोला फूटता है, दूसरे खाने-पीनेकी तकलीफ है, किन्तु जितनी तकलीफ है उतना लाभ भी हो सकता है। आप किसीके प्राण बचानेके लिये एक चीजका भी दान कर दें, उस एक सेवासे ही आपको परमात्माकी प्राप्ति हो जानी चाहिये। एक नम्बर सेवा है दूसरेका कल्याण कर देना, दो नम्बरमें सेवा किसीके प्राण बचा देना है। यदि कहो दूसरेका कल्याण क्या अपने हाथमें है? हाँ, जिस भाषामें कहा जाता है उसमें है। कल्याण तो भगवान् करते हैं, अपने हाथमें तो टट्टी, पेशाब करना भी नहीं है। कोई आदमी मर रहा है, उसे जाकर भगवान्का ध्यान-स्मरण कराया, उसका कल्याण हो गया। उसका लाखों जन्म होता, उससे उसे छुड़ा दिया। किसीका प्राण बचाया वह तो एक जन्ममें ही बचाया, अन्त समयमें भगवन्नाम सुनाकर किसीका कल्याण कर दिया तो उसे लाखों जन्मोंसे छुड़ा दिया। इसी तरह एक ओर आपके समाधि लग रही है और एक तरफ एक व्यक्ति सिसक रहा है, उसके प्राण जा रहे हैं तो उसे जाकर भगवन्नाम सुनाओ, ध्यान,

समाधि आकर पीछे लगाना। आपका लड़का डूब रहा है, प्राण जा रहे हैं, उसे भले ही छोड़ दो, दूसरा आदमी जो सिसक रहा है, उसे जाकर भगवन्नाम सुनाओ। यह एक नम्बर काम है। भजन, ध्यान, सत्संग सबसे यह तेज है, इसके बराबर कोई काम है ही नहीं। आपकी आत्माका कल्याण और दूसरेकी आत्माका कल्याण एक ही चीज है। एक ओर आप अपनी मुक्तिके लिये चेष्टा करें, एक ओर दूसरेके लिये करें, भगवान् कहें कि एकका हो सकता है तो आप दूसरेका नाम बतायें। आपके द्वारा दूसरेका कल्याण हो तो क्या आप बाकी रहेंगे। भोजन करा रहे हैं। घरके लोग कहें कि भोजन करो तो कहो कि पहले औरोंको कराओ। कहें भोजन करके करा देना नहीं तो सम्भवतः भोजन कराते-कराते भूखे ही रह जाओगे। वह भूखा रहना सब प्रकारसे श्रेष्ठ है।

भगवान् वैसे ही लोगोंको कारक पुरुष बनाकर भेजते हैं। कहते हैं यह स्वयं भूखा रहकर दूसरोंको भोजन करानेवाला है। ऐसे ही लोग भगवान्‌के साथ उनके परिकर बनकर आते हैं। वह भगवान्‌के दर्जेके समान ही है। खूब ध्यान रखना चाहिये। कोई आदमी बीमार पड़ता है तो इसीलिये आपको सत्संग छुड़ाकर वहाँ भेजते हैं, क्योंकि यह उस बीमारके और आपके दोनोंके लाभकी चीज है।

भजन, ध्यान, सत्संगमें तारा* क्या ताराका बाप भी बाधा नहीं डालते।

नारायण नारायण नारायण

---

* बहुत-सी स्त्रियाँ तारा लगनेपर (शुक्रास्त होनेपर) सत्संगमें आने-जानेमें हिचकती हैं। उनके लिये यह बात है।

सङ्गका प्रभाव

बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥

अपने मित्रपर आपत्ति आ जाय तो उससे पहलेसे जितना प्रेम है, उससे सौ गुणा अधिक प्रेम करना चाहिये। सुग्रीवको यह सब सुनकर वैराग्य हो गया। उसने कहा—हे प्रभो! वालि तो मेरा मित्र है, जिसकी कृपासे आपके दर्शन हुए। अब ऐसी कृपा करें, जिससे सब कुछ त्यागकर आपका भजन करूँ। ध्यान देना चाहिये भगवान्‌के दर्शन, वार्तालापसे मनुष्यके भक्ति पैदा हो जाती है। जिस प्रकार वालि, सुग्रीव और हनुमान्‌जीके हो गयी। इसी प्रकार परमात्माके प्यारे भक्तोंके दर्शन करनेसे हो जाता है। मनुष्य जैसा संग करता है, वैसा ही बन जाता है, इसलिये अच्छे पुरुषोंका संग करना चाहिये एवं बुरे पुरुषोंको दूरसे ही त्याग देना चाहिये। इसीलिये कहा है कि सुखी व्यक्तिमें मित्र भाव करना चाहिये, दुखियामें दयाका भाव करना चाहिये और धर्मात्माको देखकर मुग्ध होना चाहिये। नीच, पापी पुरुषोंसे दूर ही रहना चाहिये। जैसे प्लेग और हैजेकी बीमारीसे हम डरते हैं, उससे भी अधिक उनसे डरना चाहिये। शास्त्र बतलाता है कि पागल हाथीके नीचे दबकर भले ही मर जाय, किन्तु दुष्टोंका संग न करे।

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥

मनुजी कहते हैं चार ब्रह्महत्यारे हैं। पाँचवाँ वह भी ब्रह्महत्यारा है जो इनका संग करता है। इसलिये जो नीच, पापी हैं, ऐसे

प्रवचन-तिथि— ज्येष्ठ कृष्ण १४, संवत् २००१, दिनांक १८-५-१९४४, दोपहर, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

पुरुषोंका कभी भूलकर भी संग नहीं करना चाहिये। तुलसीदासजी कहते हैं दुष्ट पुरुषोंसे बचना ही चाहिये। भगवान् रामका जिनको संग प्राप्त हुआ वे तर गये। मनुष्यकी बात क्या रीछ, वानर भी तर गये। ऐसे प्रेमको देखकर हमें सबसे प्रेम हटाकर भगवान्‌से प्रेम करना चाहिये। अपने स्वार्थको तिलांजलि देकर अपने मित्रके दुःखको देखकर उसे दूर करनेके लिये भगवान् किस प्रकार तुल जाते हैं, कैसा अद्‌भुत मित्रताका व्यवहार है। भगवान्‌की लीलामें नीति, धर्मका जो पालन एवं प्रेम है उसे देख-देखकर हमें धारण करना चाहिये। ऐसे प्रभुको छोड़कर संसारके विषयोंमें प्रेम करना कितनी मूर्खता है। भगवान् सत्संग, जप एवं प्रेमसे प्रकट होते हैं। इनमें एक भी बात आप धारण कर लें तो भगवान् प्रकट हो जायँ। भगवान्‌के मिलनेके कई उपाय हैं— केवल नामजपसे, केवल ध्यानसे भगवान् प्रकट हो जाते हैं।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

नामके जपसे हृदयमें प्रेम हो जाता है और प्रेम होनेसे भगवान् मिल जाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

बाहर-भीतर ज्ञानका प्रकाश चाहो तो जिह्वारूपी देहलीपर राम-नामरूपी दीपक रख दो। नाममें ऐसी शक्ति है कि सारे गुण आ जाते हैं। नाम संसारसागरसे उद्धार कर देता है। नाममें ऐसी शक्ति है कि भगवान् प्रकट हो जाते हैं और उसके पीछे-पीछे घूमते हैं। जब नामकी इतनी महिमा है तो भगवान्‌की तो बात ही क्या है?

भगवान्‌के समान कोई है ही नहीं। जो भगवान्‌के स्थानमें अपने-आपको पुजाने लग जाता है, भगवान् उसे इस प्रकार फेंकते हैं कि पता ही नहीं लगता। ऐसे नीच पुरुषोंसे डरना चाहिये। जितना भय प्लेगसे एवं मृत्युसे नहीं होता, उतना उनसे है जो परस्त्रियोंसे अपना पैर पुजवाते हैं, अपना चित्र देकर परस्त्रियोंसे पुजवाते हैं। उनके दर्शन करनेसे हानि है, उन स्त्रियोंका भी कभी मुँह न देखे।

संसारमें भगवान्‌की भक्तिका प्रचार हो तो कलिके माथेपर कील ठोंकी जा सकती है।

हमलोगोंमें साधारण-से-साधारण पुरुष कलिके माथेपर कील ठोंक सकता है। वीर परीक्षित्‌के समान होना चाहिये। परीक्षित् कलिको मारनेको तैयार हो गये, तब कलियुगने क्षमा माँगी कि मारिये मत। पाँच हजार वर्षकी प्रतिज्ञा थी, अब वह पाँच हजार वर्ष बीत गये। तभी तो लोग धर्मकी निन्दा करते हैं, नहीं तो किसकी मजाल थी। नहीं तो वह स्थिति यदि उत्तरोत्तर बढ़ती जाती, ईश्वरकी सहायता होती तो आप देखते। भगवान् जो करते हैं ठीक ही करते हैं। सुना है पाँच हजार वर्ष बाद गंगाकी महिमा कम हो जायगी, दस हजार वर्ष बाद गंगा भी नहीं रहेगी।

मेरा कहना है कि इसी समयमें काम बना लो। अभी हिरण्यकशिपु-जैसी आपत्ति नहीं है कि जो भगवान्‌का नाम लेगा, वह मार डाला जायगा। भावीमें क्या होगा पता नहीं, इसलिये हमें ठण्डे-ठण्डेमें ही काम बना लेना चाहिये। जबतक देहमें प्राण हैं, तुम्हारा शरीरपर अधिकार है, तबतक जो काम लेना हो, वह ले लो, ताकि फिर पश्चात्ताप न करना पड़े।

स्त्री, पुत्रोंसे प्रेम हटाकर केवल परमात्मामें प्रेम करना चाहिये। अनन्य प्रेमसे जो चाहे सो हो सकता है। अनन्य प्रेम होनेके लिये दो ही बात सबसे बढ़कर है या तो भजन, ध्यान या सत्संग।

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

भगवान्‌के मिलनेका उपाय भजन, ध्यान और सत्संग है, इसलिये इनके लिये हमें तत्परतासे चेष्टा करनी चाहिये।

नारायण नारायण नारायण

व्यवहार-सुधारकी बातें

स्त्री समाजमें विवेक कम होनेसे ठग, धूर्त, दम्भियोंका उनपर प्रभाव पड़ जाता है। उनसे बचना चाहिये। लोग पैसा ठगनेके लिये स्त्रियोंको भुला लेते हैं। इनके भुलानेमें नहीं आना चाहिये।

यहाँ तीर्थोंमें आकर संयम करे यह तप है। दो बार ही भोजन करे, तीन ही चीज खाए, गंगाजल, दूधकी छूट है। इसी प्रकार पहननेके लिये वस्त्र एक या दो ही पहने। मिर्च नहीं खानी चाहिये। खटाई नहीं खानी चाहिये। यहाँ सत्संग, भजन करना चाहिये। इस प्रकारका समय यदि हमारा बीतता है तो हमारे ऊपर भगवान्‌की कृपा है। हम उस कृपाका लाभ नहीं उठाते। पूर्ण लाभ है परमात्माकी प्राप्ति। हम प्रयत्न करें जिससे परमात्माकी प्राप्ति हो जाय।

स्त्रियोंमें सेवाभाव अधिक है। घरमें स्त्री बीमार पड़ जाय तो उसके लिये इतनी हम चेष्टा नहीं करते, जितना यदि पुरुष बीमार पड़ जाय तो उसके लिये करते हैं। यह हमलोगोंकी नालायकी है। स्त्री हमारा आधा अंग है। संकटकालमें अवश्य उसकी सेवा करनी चाहिये। स्त्रियोंमें वाणीका दोष है। वे जो कुछ करती हैं, वाणीके कारण वह नष्ट कर देती हैं। जिस प्रकार किसीकी सेवा की, उसे गिना दिया तो उसका सब बट्टा खाता हो जाता है। इसलिये सेवा करके जनानी नहीं चाहिये और यदि स्त्री लड़का, लड़कियों और नौकरोंको गाली देती है, इससे वाणीका तप नष्ट होता है। किसीको चुभते वचन न बोले,

---

प्रवचन-तिथि— ज्येष्ठ शुक्ल ५, शनिवार, संवत् २००१, दिनांक २४-५-१९४४, दोपहर, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

उद्वेगका वचन नहीं बोलना चाहिये। सत्य वचन बोले, प्रिय वचन बोले, हितके वचन बोले। ईश्वरने वाणी दी है तो दरिद्रता क्यों। माताओंको अपना सुधार करना चाहिये। लड़कियोंको गाली न दे, तुम अपने-आप ही अपना नुकसान कर रही हो। अपनी वाणी गन्दी नहीं बनानी चाहिये। कामनावाले लिप्सावाले शब्द उच्चारण नहीं करने चाहिये। स्वार्थके लिये जो खुशामद है वह तो मँगतापन है, कृपणता है। मनुष्यको दीन नहीं बनना चाहिये। विनयी बनना चाहिये। विनयी बनना तो भूषण है, स्वार्थके लिये खुशामद करना कलंक है।

माता-बहनोंको ध्यान देना चाहिये। मिलके कपड़े नहीं पहनने चाहिये। कारण उन कपड़ोंमें चर्बी लगती है। हाथका बुना कपड़ा पहनना चाहिये। नीले रंगका, काले रंगका वस्त्र नहीं पहनना चाहिये। मरनेके समय किसीको काला, नीले रंगका वस्त्र भी नहीं पहनाना चाहिये, क्योंकि शास्त्र कहता है उसकी दुर्गति होती है। शास्त्र कहता है कि जिस खेतमें नील बोयी गयी, बारह वर्षतक उसमें उसके परमाणु रहते हैं। उस खेतके अन्नको खानेवाला नरकमें जाता है। नील मिलसे दूर रहना चाहिये। मिलकी चीनी भी नहीं खानी चाहिये। उसमें भी नील दी जाती है।

झूठ बोलना, चोरी करना, पराये धनका हरण करना ये कितने बड़े पाप हैं, संसारमें अधिकांश मनुष्योंकी वृत्ति आज इसी ओर हो रही है। असली चीज न्याय है। सत्य कमाईके पैसोंसे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है। हमें अपना जीवन पवित्र बनाना चाहिये। यह अन्यायसे कमाया हुआ धन आपके क्या काम आयेगा।

नारायण नारायण नारायण